चौथी दुनिया

हिंदी का पहला साप्ताहिक अखबार

www.chauthiduniya.com

मूल्य 5 रुपये

दिल्ली, 23 नवंबर–29 नवंबर 2009

पुलिस सुधार के वायदे पूरे नहीं हुए

पेज 4

जसवंत सिंह से भाजपा डर रही है

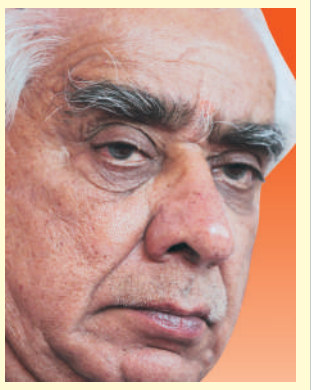

पेज 9

पाकिस्तान का दिशाहीन लोकतंत्र और आज़ाद कश्मीर

पेज 10

प्रभाष जोशी यानी स्कूल ऑफ जर्नलिज़्म

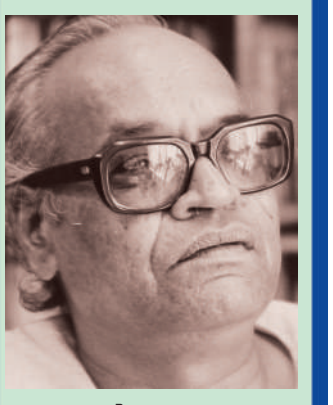

पेज 13

यह डिंपल की नहीं, मुलायम की हार है

फिरोज़ाबाद लोकसभा क्षेत्र के उपचुनाव के नतीजे ने धरतीपुत्र मुलायम सिंह यादव के क़दमों तले की ज़मीन सरका दी है. बहू डिंपल की शक्ल में ख़ुद सपा प्रमुख को मुंह की खानी पड़ी. लेकिन, अभी कुछ ख़ास बिगड़ा नहीं है, बल्कि यह तो एक संकेत और संदेश है कि चेत जाओ नेता जी, वरना आगे रसातल इंतज़ार कर रहा है.

संतोष भारतीय

उत्तर प्रदेश में एक लोकसभा व ग्यारह विधानसभा के रिक्त स्थानों के लिए चुनाव हो गए. परिणाम भी आ गए. कांग्रेस ने लोकसभा में और बहुजन समाज पार्टी ने विधानसभा में बाजी मार ली, पर यह बाजी कैसे मारी और इसका असर कहां- कहां पड़ने वाला है, इस पर सभी चुप हैं. चुप इसलिए हैं, क्योंकि अभी बताने वालों को ही नहीं मालूम कि बताना क्या है. यहीं पर पत्रकारिता की नई विकसित होने वाली शैली की शक्तिहीनता और उसकी नपुंसकता का पता चलता है. अगर बहुत मेहनत न भी की जाती और केवल दिल्ली से फिरोज़ाबाद और वहां से लखनऊ की यात्रा ही कर ली जाती तो बहुत सारे रहस्यों पर से परदा उठ जाता और जनता को पता चल जाता कि इन चुनावों ने भविष्य के लिए क्या आलेख लिख दिया है. यह भी साफ़ हो जाता कि फिरोज़ाबाद उपचुनाव भारत की राजनीति पर असर डालेगा भी या नहीं.

फिरोज़ाबाद लोकसभा उपचुनाव एक ऐसे रियलिटी शो जैसा था, जिसमें आख़िर तक रहस्य और रोमांच बना रहा. इस उपचुनाव में राजबब्बर का असंभव सपना सच हो गया और मुलायम सिंह के लिए यह चुनाव उनकी ज़िंदगी की पहली ख़तरनाक हार बन गया. हार भी ऐसी, जो संकेत दे कि अब भी न संभलने पर राजनीति की फिसलन की दिशा पतन की ओर ही जाती है. इस चुनाव ने पंचतंत्र की कछुए और खरगोश की कहानी को एक बार फिर से सच कर दिया और साबित कर दिया कि हमारी कहावतें हज़ारों साल के अनुभव से निकल कर गढ़ी गई हैं, वे यूं ही नहीं हैं. पर इस पर बाद में, अभी तो बात मुलायम सिंह से शुरू करते हैं.

मुलायम सिंह उत्तर प्रदेश की राजनीति में जनता पार्टी की सरकार के समय चमके. उस समय उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री रामनरेश यादव थे. मुलायम सिंह ने सहकारिता मंत्री रहते हुए कांग्रेस के सहकारिता तंत्र को तोड़ दिया और एक नया तंत्र खड़ा कर दिया. मुलायम सिंह उत्तर प्रदेश में सत्ता के केंद्र में पहुंचने वाली वंचित, लेकिन ताक़तवर पिछड़ी जातियों के नेता बन कर उभरे. हालांकि जनता पार्टी की सरकार के मुख्यमंत्री रामनरेश यादव भी पिछड़े थे, उनके मंत्रिमंडल में कल्याण सिंह और ओमप्रकाश सिंह सरीखे पिछड़े नेता मंत्री थे, लेकिन इनके बीच उभरे केवल मुलायम सिंह. मुलायम सिंह सारे प्रदेश में घूमते थे. वे कार्यकर्ताओं में विधान सभाओं के अलावा ज़िला परिषदों, ब्लॉक समितियों और ग्राम सभाओं में जाने का सपना जगाने लगे. दिन भर थक कर रात में सहकारिता मंत्री के बंगले के आंगन में चारपाई पर बैठे मुलायम सिंह को सूखे फुल्के, आलू की सब्ज़ी और काली उड़द की दाल खाते जिन्होंने देखा होगा, उन्हें उस समय लगा होगा कि मुलायम सिंह के रूप में उत्तर प्रदेश की आवाज़ बनने वाला एक नेता आकार ले रहा है.

मुलायम सिंह चौधरी चरण सिंह के साथ राजनीति करते थे और राज नारायण जी उनके दिशा निर्देशक थे. मुलायम सिंह में इसी दौरान मुख्यमंत्री बनने की महत्वाकांक्षा पैदा हुई, जिसके लिए उन्हें काफ़ी इंतज़ार करना पड़ा. वे विपक्ष में रहे और मुख्यमंत्री वी पी सिंह को उन्होंने ख़ूब परेशान किया. श्रीपति मिश्र, नारायण दत्त तिवारी, दोनों ही मुलायम सिंह से पनाह मांगते रहे. वीर बहादुर सिंह थे तो मुख्यमंत्री, पर उनकी दोस्ती मुलायम सिंह से काफ़ी रही. और यह वह दौर था, जब मुलायम सिंह ने ढेरों नौजवानों को सचमुच नेता बना दिया. उन्होंने एक ऐसी टीम खड़ी कर दी, जो वैचारिक हथियार से लैस उनके लिए जीने-मरने का काम करती थी. सन् नवासी के लोकसभा चुनावों के साथ उत्तर प्रदेश में विधानसभा के भी चुनाव हुए. अजीत सिंह और मुलायम सिंह के बीच चुनाव हुआ, जिसमें वी पी सिंह के साथियों के समर्थन के बाद मुलायम सिंह मुख्यमंत्री बने.

मुख्यमंत्री रहते हुए मुलायम सिंह को अनुभव हुआ कि उन्हें अति विश्वस्त साथियों की ज़रूरत है. दरअसल उन्होंने जिन पर भरोसा किया, उन पर से उनका भरोसा टूटा भी जल्दी. उन्हें लगा कि उनका इस्तेमाल लोग करते हैं और अपना क़द बढ़ा लेते हैं. उन्होंने अपनी अध्यक्षता में नई पार्टी बनाई और अपने दो भाइयों को महत्वपूर्ण ज़िम्मेदारी सौंपी. उन्होंने शिवपाल सिंह यादव को उत्तर प्रदेश में और रामगोपाल यादव को दिल्ली में अपने प्रतिनिधि के तौर पर प्रस्तुत किया. अमर सिंह उनके सर्वाधिक विश्वस्त रणनीतिकार, दोस्त और सखा बन कर उभरे.

फोटो- *प्रभात पाण्डेय*

इन दस सालों में जहां मुलायम सिंह ने कांशीराम और मायावती के साथ राजनैतिक प्रयोग किए, दोस्ती और दुश्मनी की पारी खेली, वहीं उन्होंने अपने उन साथियों से दूरी बना ली या दूरी बनती गई, जिन्होंने उन्हें मुलायम सिंह बनाया था. सन् उन्नीस सौ बयानबे से पहले मुलायम सिंह ने जब पैसा चाहा, उनके साथियों ने लोगों से इकट्ठा कर उम्मीद से ज़्यादा दिया. जब गाड़ी चाही, तब गाड़ियां दीं, पर सन् बयानबे से उनके साथी बदलने लगे. कार्यकर्ताओं को लगने लगा कि मुलायम सिंह उनसे दूर जाने लगे हैं. दो हज़ार आते-आते उनका संवाद भी न केवल कार्यकर्ताओं से, बल्कि पुराने साथियों से भी कम होने लगा. इसका कारण तो मुलायम सिंह ख़ुद तलाश सकते हैं, पर उनके लोगों को लगने लगा कि उनके साथी के रूप में रहने वाले नेताजी अब नेताजी नहीं, अध्यक्ष जी हो गए हैं.

मुलायम सिंह जी ने हल्की राह बदली, पहले अपने बेटे को संसद में भेजा, फिर अपने भतीजे को. उनके दल के लोगों को लगा कि मुलायम सिंह अब और नेताओं से अलग नहीं, बल्कि उन्हीं में से एक हैं. विधानसभा में हार के बाद वे संघर्ष करने, लोगों के बीच जाने, उनके दुखदर्द का हिस्सा बनने की बात ज़रूर करते रहे, पर उनके कार्यकर्ताओं पर उसका असर कम हुआ. होता भी कैसे, मुलायम सिंह की बदली हुई राजनैतिक शैली उनके दल के भीतर आलोचना और शक़ का शिकार हो चुकी थी.

मुलायम सिंह को कैसे पता नहीं चला कि उनके दल के भीतर असंतोष है. उन्हें कैसे पता नहीं चला कि अब उनकी रणनीति पर अमल करने वाले लोग कम हो चुके हैं. नई राह पर चलने के अंतर्विरोधों ने अनदेखी मुश्किलें खड़ी

(शेष पृष्ठ 2 पर)

पंद्रह हज़ार वोटों ने रख ली लाज

फिरोज़ाबाद में राजबब्बर को 3,12,728 वोट मिले, जबकि डिंपल यादव को 2,27,385 वोट मिले. बसपा के एस पी सिंह बघेल 2,13,571 मत लेकर तीसरे स्थान पर रहे. अगर बघेल को पंद्रह हज़ार वोट और मिल जाते तो फिरोज़ाबाद में डिंपल यादव तीसरे स्थान पर होतीं. इस फ़र्क़ को मुलायम सिंह को याद रखना चाहिए. भाजपा यहां पर दस हज़ार से भी कम मत प्राप्त कर सकी. राजबब्बर ने फिरोज़ाबाद सीट से चुनाव बिना किसी जातीय समर्थन और बिना किसी पार्टी मशीनरी के लड़ा. बाहर से जो लोग गए भी थे, वे फिरोज़ाबाद को जानते नहीं थे तथा उनका मनोबल फिरोज़ाबाद संसदीय सीट के जातीय गुणाभाग की वजह से बहुत ऊंचा नहीं था. फिरोज़ाबाद देश में चूड़ियों के सबसे बड़े निर्माण केंद्र के रूप में जाना जाता है. यहां के देहाती क्षेत्र में सबसे ज़्यादा आबादी यादवों की है. अब तक यादव, लोधी और मुसलमान मिलकर वोट देते रहे हैं, पर इस चुनाव में इन तीनों ने मुलायम सिंह का पूरा साथ नहीं दिया और मुलायम सिंह की बहू डिंपल यादव राज बब्बर से 85 हज़ार से ज़्यादा मतों से हार गईं.

कई कैबिनेट नोट्स तो इतनी लापरवाही से तैयार किए गए थे कि उनमें मंत्रालय का नाम, पृष्ठ व फ़ाइल संख्या, पैराग्राफ और टाइपिंग जैसी बुनियादी ग़लतियां थीं.

दिल्ली का बाबू

दिलीप चेरियन

के एम चंद्रशेखर की पाठशाला

केंद्रीय मंत्रिमंडल और इसकी विभिन्न समितियों द्वारा मिलने वाले नोट्स की गुणवत्ता में सुधार के बाबत बार–बार समझाए जाने के बावजूद संयुक्त सचिव स्तर के बाबुओं पर कोई ख़ास असर नहीं पड़ा है. आख़िर में केंद्रीय सचिव के एम चंद्रशेखर ने फ़ैसला किया है कि वह बाबुओं को स्पष्ट और त्रुटिमुक्त नोट्स बनाना सिखाएंगे.

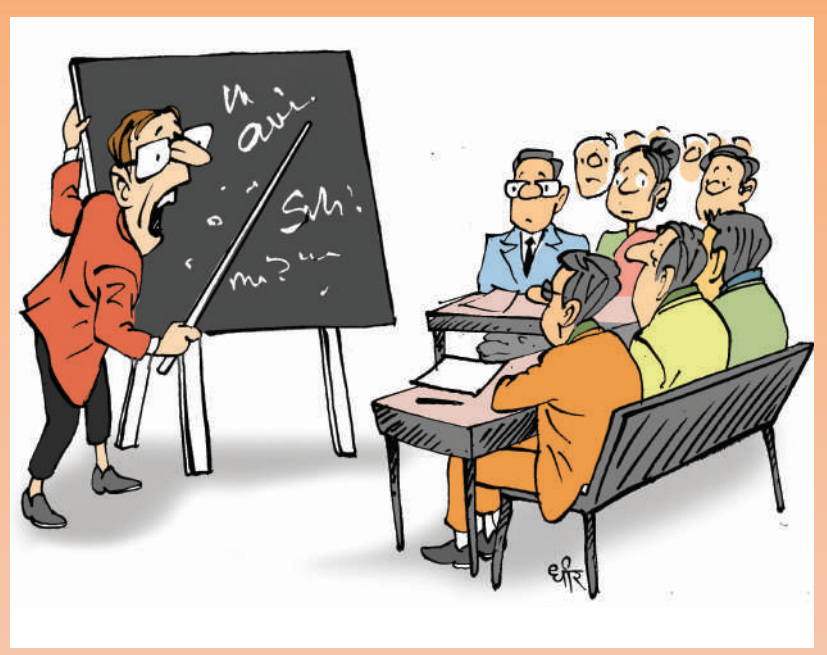

सूत्रों के मुताबिक़, केंद्रीय सचिव बाबुओं से काफी नाराज़ हैं. उनकी नाराज़गी की वजह यह है कि सचिवों समेत कई वरिष्ठ बाबुओं को स्पष्ट कैबिनेट नोट बनाने के लिए आवश्यक दिशानिर्देश पुस्तिका देने के बावजूद नोट्स की पृष्ठभूमि में कई बाहरी सूचनाएं मिल रही हैं. सूत्रों का कहना है कि कई कैबिनेट नोट्स तो इतनी लापरवाही से तैयार किए गए थे कि उनमें मंत्रालय का नाम, पृष्ठ व फ़ाइल संख्या, पैराग्राफ और टाइपिंग जैसी बुनियादी ग़लतियां थीं. उक्त ग़लतियां जब तक बाबुओं की नज़र में थीं, तब तक तो किसी ने ध्यान नहीं दिया, लेकिन आज आरटीआई जैसे अधिकारों से लैस जनता के सामने सरकारी फ़ाइलों और दस्तावेजों को देखने का रास्ता खुल गया है. ज़ाहिर है, ऐसे में बाबुओं को अधिक सावधानी बरतने की ज़रूरत है. इसलिए अब कैबिनेट नोट को अंतिम रूप देने से पहले बाबुओं को केंद्रीय सचिवालय की जांच प्रक्रिया से गुज़रने के अलावा पीएमओ कार्यालय से भी स्वीकृति लेनी पड़ेगी. क्या चंद्रशेखर की इस पाठशाला का बाबुओं पर कोई असर पड़ेगा? यह तो सिर्फ़ समय ही बताएगा!

बाबुओं का नया खेल

कॉमनवेल्थ खेल 2010 की तैयारियों से जुड़े विवाद कई बाबुओं के लिए वरदान बन गए हैं. अब जबकि सरकार ने स्पष्ट कर दिया है कि राजधानी में खेलों की तैयारियों को अन्य सभी कार्यों से ज़्यादा प्रमुखता दी जाए, तो ऐसे में तैयारियों से जुड़े कुछ बाबू मौक़े का फ़ायदा उठाते हुए अपनी–अपनी कुर्सियों से चिपक गए हैं. सूत्रों के मुताबिक़, दूरदर्शन की महानिदेशक अरुणा शर्मा ने भी अपना कार्यकाल एक साल और बढ़ाने का प्रबंध कर लिया है. इसके लिए उन्होंने दलील दी है कि वह खेलों के अधिकारिक राज्य प्रसारणकर्ताओं की प्रमुख के तौर पर काम करेंगी.

इसी दौरान कई और बाबुओं को भी खेलों की आयोजन समिति में शामिल किया जा रहा है. समिति के अध्यक्ष सुरेश कलमाड़ी और कॉमनवेल्थ गेम्स फेडरेशन (सीजीएफ) के सभापति माइक फेनल के बीच हुए सार्वजनिक विवाद के बाद सरकार ने जरनैल सिंह को आयोजन समिति के सीईओ के रूप में नियुक्त किया है. ग़ौरतलब है कि जरनैल सिंह 1974 बैच के मणिपुर–त्रिपुरा कैडर के अधिकारी हैं. इसके अलावा खेलमंत्री एम एस गिल ने आयोजन समिति के उस अनुरोध को भी ठुकरा दिया है, जिसमें आयोजन की तैयारियों को और मज़बूत करने के लिए तीन वरिष्ठ आईएएस बाबुओं को शामिल करने की सिफ़ारिश की गई थी. हालांकि इससे फेनल और कंपनी की चिंताएं कम नहीं होंगी, लेकिन कम से कम बाबू लोग तो कोई शिकायत नहीं कर रहे हैं.

यह डिंपल की नहीं, मुलायम की हार है

पृष्ठ एक का शेष

कर दीं. अनिल अंबानी को राज्यसभा से त्यागपत्र देना पड़ा, क्योंकि उन्हें लगा कि वे सभी का निशाना बन रहे हैं. सुब्रत राय से उनकी दूरी बढ़ गई है, ऐसी ख़बरें उन्हीं के यहां से फैलने लगीं. राज बब्बर और अमर सिंह का झगड़ा सरेआम हो गया.

इतना ही नहीं, यह भी ख़बरें फैलीं कि अमर सिंह को मुलायम सिंह का परिवार पसंद नहीं करता है. मुलायम सिंह के राजनैतिक सम्मेलनों में शामिल होने की ख़बरें कम चर्चा में आईं, सिनेमा के कलाकारों के कार्यक्रम ज़्यादा चर्चा में आए. वी पी सिंह के किसान आंदोलन की मांगें क्यों मुलायम सिंह ने नहीं मानीं, आज तक किसी को समझ में नहीं आया. उनके मुख्यमंत्री रहते हुए उनके दोस्त उनसे दूर हो गए और मायावती ने उत्तर प्रदेश में उनके मुक़ाबले में खड़ी अकेली ताक़त के रूप में अपने को जनता के सामने प्रस्तुत कर दिया. मायावती मुख्यमंत्री बन गईं.

लोकसभा चुनाव में अखिलेश यादव से इस्तीफ़ा दिलवाया गया. यह इसलिए, क्योंकि मुलायम सिंह को लगा कि तीन लाख यादव मतदाताओं और एक लाख लोधी मतदाताओं की मदद से वे फिरोज़ाबाद आसानी से जीत लेंगे. आख़िर उनके साथ

फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

लोधियों के सबसे बड़े नेता कल्याण सिंह थे. मुलायम सिंह ने लोकसभा चुनावों में जातीय सीटों के परिणामों से कोई सबक ही नहीं लिया. फर्रुखाबाद लोकसभा सीट पर यादव, ठाकुर और लोधी मतदाताओं की संख्या उनके उम्मीदवार को दो लाख वोटों से जिताने की ताक़त रखती थी, पर फर्रुखाबाद के यादवों ने मुलायम सिंह की, लोधियों ने कल्याण सिंह की और ठाकुरों ने अमर सिंह की बात नहीं मानी. उनका उम्मीदवार चौथे नंबर पर चला गया.

मुलायम सिंह ने शायद सोचा होगा कि वे अपनी बहू को जैसे ही लोकसभा का उम्मीदवार घोषित करेंगे, यादवों में बिजली दौड़ जाएगी. पर अब फिरोज़ाबाद जाने पर पता चलता है कि अपनी बहू को उम्मीदवार बनाना ही मुलायम सिंह को जीवन की तीखी हार का सामना करा गया. जिस तरह बिहार में लालू यादव का अपने परिवार के लोगों को लोकसभा और राज्यसभा में भेजना यादवों में गुस्से का और उनसे दूर जाने का कारण बन गया, वैसा ही मुलायम सिंह के साथ अब उत्तर प्रदेश में हो गया है. फिरोज़ाबाद के लोगों का, विशेषकर यादवों का कहना है कि मुलायम सिंह राजनैतिक लड़ाई नहीं, परिवार के स्थापन की लड़ाई लड़ रहे थे. वे यादवों के सम्मान के नाम पर अपने परिवार के हर सदस्य को राजनीति में लाना चाहते हैं. उन्हीं के दल के यादवों के एक गुट ने कहा कि पहले नेता जी इंटरव्यू लेते थे और पूछते थे कि तुम्हें क्यों विधानसभा या लोकसभा का टिकट दिया जाए, तुमने किया क्या है, पर अब वे नहीं पूछते.

मुलायम सिंह ने अपने दल के कई नेताओं के बेटों को टिकट दिए, उनके परिवार के लोगों को आगे बढ़ाया, पर लोगों ने अनदेखा कर दिया. अब जब उन्हें केवल परिवार के संरक्षक के रूप में उनके दल के लोग देख रहे हैं तो ख़तरनाक प्रतिक्रिया हो रही है. उनके समर्थक वर्ग ने, उनके मतदाताओं ने उनसे विद्रोह कर एक संकेत भेजा है. मुलायम सिंह इस संकेत को कितना समझते हैं और अपने को पुन: अपने दल और जनता के नज़दीक ले जाने के लिए क्या क़दम उठाते हैं, यह देखना दिलचस्प होगा. इसका एक उदाहरण उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी का अध्यक्ष पद है. एक रात में मुलायम सिंह यादव ने अपने बेटे को उत्तर प्रदेश में पार्टी का अध्यक्ष बना दिया. पार्टी सहित समस्त समर्थक वर्ग में सवाल खड़ा हो गया कि क्या संगठन क्षमता है अखिलेश यादव की, पार्टी को बढ़ाने के लिए क्या संघर्ष किया है. जितनी उम्र अखिलेश यादव की है, उससे ज़्यादा बार जेल गए हैं उनकी पार्टी के बहुत से नेता. क्यों उनमें से किसी को अध्यक्ष नहीं बनाया. अखिलेश यादव की अकेली योग्यता मुलायम सिंह यादव का बेटा होना है. मुलायम सिंह को चाहिए था किसी और को अध्यक्ष बनाते और अखिलेश यादव को उत्तर प्रदेश में पांच साल उसके साथ दौड़ाते, तब लोगों के दिमाग़ में सवाल नहीं खड़े होते. यह न करने के कारण प्रदेश में समाजवादी पार्टी का ताना–बाना चरमरा गया.

फोटो–*पीटीआई*

मुलायम सिंह को अतिविश्वास था, इसलिए उन्होंने फिरोज़ाबाद में अपनी बहू का नाम भी काफी बाद में खोला. लेकिन उन्हें अंदाज़ा हो गया कि लड़ाई उनके हाथ से निकल रही है तो आनन–फ़ानन में उन्होंने अजीत सिंह से हाथ मिलाया. लोधी वोट को दूर जाने से बचाने का उनके पास कोई उपाय नहीं था, इसलिए उन्होंने अजीत सिंह के बेटे जयंत चौधरी को बुलवाया. राजनीतिक तौर पर फिरोज़ाबाद ऐसी बालू की तरह साबित हुआ कि जितनी मुलायम सिंह ने मुट्ठी कसी, उतनी बालू उनकी मुट्ठी से बाहर निकली.

पिछड़े तबके के लोग मुलायम सिंह से निराश नहीं हैं, लेकिन नाराज़ ज़रूर हैं. वे अस्सी के दशक वाले मुलायम सिंह की तलाश में हैं. उन्हें लगता है कि मुलायम सिंह शायद अभी भी संभल जाएं, क्योंकि मुलायम सिंह सामंती परंपरा के नहीं हैं, जो ग़लतियों से सीख न लें. फिरोज़ाबाद उपचुनाव ने मुलायम सिंह के सामने सोचने के लिए बहुत कुछ रख दिया है, जिनमें पहला विषय है कि क्या लोग जातियों की सीमा से ऊपर उठने लगे हैं? क्या अब जातीय समीकरण से ऊपर उठकर ऐसे उम्मीदवार तलाशने होंगे, जिन्होंने पार्टी के लिए संघर्ष किया हो? क्या परिवार को बाद में और पार्टी कार्यकर्ता को पहले रखने का समय आ गया है?

मुलायम सिंह के सामने एक राजनीतिक ख़तरा भी खड़ा हो गया है. उन्होंने इन चुनावों में अजीत सिंह और कल्याण सिंह के साथ मिलकर जातीय समीकरण बनाने की कोशिश की थी. कल्याण सिंह ने कभी अजीत सिंह को पसंद नहीं किया. कल्याण सिंह, अजीत सिंह को साथ लाने के विरोधी थे, इसलिए उन्होंने लोधियों के बीच गहराई से काम नहीं किया. मुलायम सिंह को लगा कि कल्याण सिंह की लोधियों में पूछ कम हो गई है और अब वे वोट ट्रांसफर की वजह से मुलायम सिंह से दूरी बना भी ली और इसे दिखा भी दिया. मुलायम सिंह ने कल्याण सिंह को समाजवादी पार्टी में न लेने की बात कह अपना रुख़ साफ़ कर दिया कि अब वे कल्याण सिंह के साथ नहीं हैं, लेकिन नुक़सान तो हो चुका है. पिछले चार सालों से उनकी भाषा में मुसलमानों के लिए कोई एजेंडा सुनाई नहीं देता. इसलिए मुसलमानों ने उत्तर प्रदेश में ख़ामोशी से अपना वोट मायावती की ओर मोड़ दिया. मज़े की बात इस वोट के लिए मायावती ने कोई कोशिश को सशक्त चुनौती देने की स्थिति में आ जाएंगे.

मुलायम सिंह को गांवों की, जहां उनका समर्थक वर्ग रहता है, एक मानसिकता याद रखनी चाहिए. गांव में शोहदे और मनचले होते हैं. गांव वाले उन्हें बर्दाश्त करते हैं, क्योंकि वे उनके आदी हो चुके होते हैं. लेकिन अगर कोई साधू गांव में आ जाए और गांव के लोगों को लगे कि वह भी शोहदापन कर रहा है तो बर्दाश्त नहीं करते. मुलायम सिंह को उत्तर प्रदेश के उनके समर्थक वर्ग ने साधू और लीक से हटकर चलने वाले नेता के रूप में देखा था. उन्हें मुलायम सिंह का कांग्रेस की शैली अपनाना अखर रहा है. वे चाहते हैं कि मुलायम सिंह, लोहिया और जयप्रकाश की शैली अपनाएं. इसके बाद भी अगर वे अपनी शैली नहीं बदलते तो इसकी ज़िम्मेदारी सिर्फ़ और सिर्फ़ उनकी होगी. इसका पहला क़दम होगा कि उन्हें उनकी बातें सुननी होंगी, जो उनके साथ सालों से लगे हैं. उनके हैं, लेकिन उनकी आलोचना उनकी भलाई के लिए करते हैं. पहला कदम कब उठाएंगे मुलायम सिंह जी!

(अगले अंक में पढ़ें, राज बब्बर कैसे जीते)

editor@chauthiduniya.com

ही नहीं की थी, पर अपने लिए समाजवादी पार्टी में कोई सम्मान न देख वे तात्कालिक तौर पर बसपा की ओर चले गए.

मुलायम सिंह के लिए ख़तरा केवल मायावती हैं, जिन्होंने दिखा दिया कि रणनीति कैसे अच्छी बनाई जाती है. चुनावों में वे कहीं नहीं गईं, लेकिन हर जगह उनकी उपस्थिति नज़र आई. ग्यारह विधानसभा सीटों में से नौ का जीतना उन्हें एक नया कद दे गया. मायावती ने भाजपा और कांग्रेस को एक छोटे दायरे में समेट दिया, केंद्रीय मंत्रियों को अपने क्षेत्र में उभरने नहीं दिया और फ़िलहाल बता दिया है कि उत्तर प्रदेश में अभी भाजपा या कांग्रेस के लिए कोई संभावना नहीं है. लखनऊ पश्चिम की सीट कांग्रेस को मिलना भाजपा की अंदरूनी लड़ाई का परिणाम है, इसे सभी मानते हैं.

मायावती के लिए भी अगर कोई राजनीतिक ख़तरा बन सकते हैं तो वे दो लोग हैं. एक तो स्वयं मायावती, दूसरे मुलायम सिंह. मायावती की राजनैतिक शैली से उनके दल में भी छुटपुट आवाज़ें उठने लगी हैं. और अगर मुलायम सिंह ने अपने को अपने समर्थकों की इच्छानुसार पहले वाला रुख अख्तियार कर लिया, तो वे मायावती

चौथी दुनिया
देश का पहला साप्ताहिक अखबार

वर्ष 1 अंक 37, 23 नवंबर–29 नवंबर 2009

संपादक
संतोष भारतीय

मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210–211 सेक्टर 63, नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के – 2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित

संपादकीय कार्यालय
के –2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग
कनॉट प्लेस, नई दिल्ली 110001
कैंप कार्यालय एफ–2, सेक्टर –11, नोएडा
गौतमबुद्ध नगर उत्तरप्रदेश – 201301

फोन न.
संपादकीय 011–23418962
विज्ञापन + 0120–4783999
प्रसार + 91 9810017924
फैक्स न. 0120–4783950

पृष्ठ–16 (+4 बिहार व झारखंड)

चौथी दुनिया में छपे सभी लेख अथवा सामग्री पर चौथी दुनिया का कॉपीराइट है. बिना अनुमति के किसी लेख अथवा सामग्री के पुन: प्रकाशन पर क़ानूनी कार्रवाई की जाएगी.

समस्त कानूनी विवादों का क्षेत्राधिकार दिल्ली न्यायालयों के अधीन होगा.

विरोधियों ने तो प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष पद से यशपाल आर्या को हटाने के लिए पूरा जोर लगा दिया था, लेकिन हाईकमान ने उनके मंसूबों पर पानी फेर दिया.

आर्या को हटाने की मुहिम ध्वस्त

राजकुमार शर्मा

विकासनगर उपचुनाव में हार के लिए कांग्रेस हाईकमान ने प्रदेश संगठन में व्याप्त गुटबाज़ी और अंतर्कलह को ज़िम्मेदार माना है. हाईकमान ने इसके लिए वरिष्ठ नेता एवं केंद्रीय मंत्री हरीश रावत को कड़ी फटकार लगाई है. कांग्रेस की इस अंतर्कलह का लाभ भाजपा ने जमकर उठाया. मुख्यमंत्री निशंक ने विकासनगर सीट को अपनी प्रतिष्ठा से जोड़ते हुए राज्य की सरकारी मशीनरी इस चुनाव में झोंक दी थी. नतीजतन, कांग्रेस को उसी उत्तराखंड में मुंह की खानी पड़ी, जहां गत लोकसभा चुनाव में उसने सभी पांच संसदीय सीटों पर विजयश्री हासिल की थी. इस सीट पर कांग्रेस ने स्वर्गीय ब्रह्मदत्त के पुत्र एवं पूर्व मंत्री नवप्रभात को अपना प्रत्याशी बनाया था, जो अपने दंभ के चलते चुनाव हार गए. ख़ुद को कद्दावर नेता समझने वाले नवप्रभात ने इस चुनाव में अपने आचरण एवं व्यवहार में जो चूक की, उसी का ख़ामियाज़ा कांग्रेस को हार के रूप में भुगतना पड़ा. चुनाव के दौरान जिस तरह आपस में खींचतान और अनर्गल बयानबाज़ी की गई, उससे कांग्रेस अपनी जीती बाजी हार गई.

उपचुनाव में हार के बाद कांग्रेस की अंतर्कलह खुलकर सामने आ गई. कई कद्दावर नेताओं ने हार के लिए प्रदेश अध्यक्ष यशपाल आर्या को ज़िम्मेदार मानते हुए उन्हें उनके पद से हटाने की मुहिम शुरू कर दी. वे पार्टी के राष्ट्रीय महासचिव राहुल गांधी के दरबार में भी दस्तक दे आए. प्रदेश अध्यक्षी के लालच में तिवारी गुट की प्रमुख नेता इंदिरा हृदयेश ने अपने धुर विरोधी हरीश रावत से हाथ मिला लिया. इस अभियान में उनका साथ दिया कुमायूं के सांसद केसी बाबा एवं राज्य में नेता प्रतिपक्ष हरक सिंह रावत ने. उधर आर्या के समर्थन में सांसदद्वय सतपाल महाराज एवं विजय बहुगुणा, तिलकराज बेहड़ और ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मचारी मैदान में कूद पड़े. आर्या के ख़िलाफ़ बग़ावत हाईकमान को रास नहीं आई, नतीजतन विरोधी नेताओं को दस जनपथ से बैरंग वापस लौटना पड़ा.

कांग्रेस हाईकमान ने यशपाल आर्या को प्रदेश अध्यक्ष पद का दायित्व देकर उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री मायावती के दलित एजेंडे का हल खोजने के साथ यह संदेश देने की कोशिश की थी कि पार्टी में आज भी दलित नेताओं का सम्मान सुरक्षित है. आर्या ने भी पूरी निष्ठा से कांग्रेस का जनाधार बढ़ाने का काम किया. उनके नेतृत्व में आम चुनाव लड़ा गया और कांग्रेस को यहां की सभी पांच संसदीय सीटों पर शानदार विजय मिली. सूबे में सत्तारूढ़ भाजपा को क़रारी हार का मुंह देखना पड़ा. इस हार का ठीकरा सूबे के मुख्यमंत्री भुवन चंद्र खंडूरी के सिर फूटा और उन्हें सत्ता से बेदख़ल होना पड़ा. यहां बिल्ली के भाग्य से छींका टूटने की कहावत चरितार्थ हुई और रमेश पोखरियाल निशंक मुख्यमंत्री बन गए.

दरअसल, आर्या को निपटाने की यह मुहिम राजपूत लॉबी के अगुवा एवं केंद्रीय मंत्री हरीश रावत और पूर्व मुख्यमंत्री एन डी तिवारी गुट की प्रमुख नेता इंदिरा हृदयेश को आगे करके चलाई जा रही है. मालूम हो कि आम चुनाव में कांग्रेस हाईकमान ने इंदिरा हृदयेश को प्रदेश की चुनाव समिति का प्रमुख बनाया था, जिससे उनकी संगठन क्षमता को पहले ही जांचा–परखा जा चुका है. रावत गुट भी मिशन 2012 के पहले ही संगठन के मुखिया के पद पर नेता प्रतिपक्ष हरक सिंह रावत को देखना चाहता है.

आर्या एवं हरीश रावत चर्चित कालाढूंगी कांड पर भी आपस में बंटे दिख रहे हैं. परिणामस्वरूप इस प्रकरण में प्रदेश स्तरीय आंदोलन शुरू होने से पहले ही बिखर गया. ग़ौरतलब है कि पिछले दिनों पिथौरागढ़ के कालाढूंगी थाने में एक अपराधी द्वारा इलाक़े के ब्लॉक प्रमुख बलवंत सिंह कन्याल की हत्या कर दी गई थी, जिससे आक्रोशित जनता ने थाने के एएसआई को पत्थरों से पीट–पीटकर मार डाला था और थाने में आगजनी के साथ लूटपाट भी की थी. इस प्रकरण में पहले तो पूरे थाने के ख़िलाफ़ कार्यवाही हुई, फिर पुलिस ने संजय नेगी समेत कुछ कांग्रेसी कार्यकर्ताओं को झूठे मुक़दमों में फंसा दिया. इस कांड को लेकर आज भी स्थानीय कांग्रेसियों में रोष है, किंतु आर्या की घोषणा के बावजूद गुटबंदी के चलते कोई आंदोलन शुरू नहीं किया जा सका.

आर्या को प्रदेश अध्यक्ष पद से हटाने के लिए गुटों के क्षत्रपों ने कांग्रेस हाईकमान एवं राहुल गांधी के दरबार में दस्तक तो दे दी, लेकिन उन्हें अप्रत्याशित रूप से मुंह की खानी पड़ी. दरअसल, राहुल का ग़रीब एवं दलित प्रेम जगज़ाहिर है. वह ज़मीनी हक़ीक़त की पड़ताल करने के लिए उत्तर प्रदेश की ग़रीब बस्तियों में अपनी रातें गुज़ारते हैं. ऐसे में आर्या को उनके पद से हटाने के लिए चलाया गया अभियान भला कैसे कामयाब होता? हाईकमान ने मिशन 2012 के मद्देनजर प्रदेश संगठन में व्याप्त गुटबाज़ी पर अंकुश लगाते हुए आर्या को परोक्ष रूप से अपना समर्थन ज़ाहिर कर दिया है. पार्टी सूत्रों का मानना है कि हाईकमान के इस क़दम से संगठन के निष्ठावान कार्यकर्ताओं में निश्चित रूप से उत्साह का संचार होगा.

feedback@chauthiduniya.com

फोटो–प्रभात पाण्डेय

राहुल गांधी उत्तर प्रदेश के दलित बहुल गांवों-बस्तियों में जा रहे हैं, रातें गुज़ार रहे हैं और वहां की समस्याओं को ख़ुद देख-सुन रहे हैं. लेकिन, उत्तराखंड के गुटबाज़ कांग्रेसी नेता अपने उस प्रदेश अध्यक्ष को पद से हटाने के लिए तिकड़म भिड़ा रहे थे, जिसने आमचुनाव में पार्टी के सिर पर जीत का सेहरा बांधा था. विरोधियों को मुंह की खानी पड़ी. कैसे? पढ़िए इस रिपोर्ट में.

दल गुटबाज़ी के दलदल में

कांग्रेस हाईकमान ने प्रदेश संगठन की अंतर्कलह शांत करने का जो प्रयास किया है, उसका असर ज़्यादा समय तक टिका नहीं रहने वाला. मिशन 2012 को अपनी मुट्ठी में करने की हसरत पाले कुछ नेता अभी भी बाज नहीं आ रहे हैं. इनमें सबसे आगे हैं केंद्रीय मंत्री हरीश रावत. उन्होंने इस बार अपना सेनापति चुन-चुनकर अगड़ी जाति (ब्राह्मण) के नेताओं को बनाया है. रावत गुट ने यूं तो इंदिरा हृदयेश को प्रदेश अध्यक्ष बनाने की घोषणा कर रखी है, लेकिन सूत्रों का दावा है कि अंदरखाने का सच इसके विपरीत है. हरीश गुट के विधायक मनोज तिवारी कहते हैं कि अगर हाईकमान मिशन 2012 को कामयाब बनाना चाहता है तो प्रदेश अध्यक्ष पद पर हरीश रावत को बैठाया जाना ज़रूरी है. रावत ही इस मिशन को सफल बना सकते हैं.

विधायक तिवारी की इस बात से साफ़ है कि हरीश ख़ेमे की असल मंशा क्या है और प्रदेश संगठन के भीतरखाने में व्याप्त फूट अभी ख़त्म नहीं हुई है, बल्कि दिनोंदिन वह जोर पकड़ रही है. यानी चिंगारी किसी दिन शोला बन सकती है.

घर से ही मिलेगी शिवराज को चुनौती

संध्या पांडे

मध्य प्रदेश मंत्रिमंडल का पुनर्गठन बीजेपी के लिए भविष्य में एक बहुत बड़ी चुनौती बनने जा रहा है. राज्य मंत्रिमंडल एवं प्रशासन में अपनी पकड़ रखने में अक्षम मुख्यमंत्री इस पुनर्गठन के बाद अधिक कमज़ोर हो गए हैं. साथ ही यह तय हो गया है कि सूबे का मंत्रिमंडल मुख्यमंत्री की दूरदर्शिता से नहीं, बल्कि भाजपा हाईकमान के सूत्रों के आधार पर चलता है. मुख्यमंत्री शिवराज सिंह ने मंत्रिमंडल पुनर्गठन में अपनी उपेक्षा को विभाग वितरण के समय ही सार्वजनिक रूप से ज़ाहिर भी कर दिया था. मंत्रिमंडल का पुनर्गठन प्रदेश भाजपा की राजनीति में भूचाल साबित हो सकता है. इस पुनर्गठन के बाद विद्रोह की हवा कार्यकर्ता स्तर के भाजपाई तक को टटोल गई. मुख्यमंत्री संभवत: यह नहीं समझ सके कि किसी स्वर्णिम प्रदेश का सपना पूरा करने के लिए एक परिपक्व राजनीतिक और प्रशासनिक सोच की ज़रूरत होती है. शिवराज सिंह शुरू से ही कमज़ोर मुख्यमंत्री साबित हुए हैं. यह बात अलग है कि राज्य के पूर्व मुख्य सचिव एवं किसी आईएएस अधिकारी द्वारा किए गए घोटाले के संदर्भ में शासन द्वारा कार्यवाही की गई, लेकिन सूबे में प्रमुख सचिव स्तर से ऊपर के अधिकारियों को मनमानी की पूरी छूट मिली. नतीजतन भ्रष्टाचार इस क़दर फैला कि आम आदमी उससे सीधे प्रभावित होने लगा. सूबे में जंगलराज सा क़ायम हो गया. पुलिस–प्रशासन को लोग मज़ाक समझने लगे और उसका दुरुपयोग होने लगा. इसी दौरान शिवराज सिंह ने मंत्रिमंडल के पुनर्गठन की अनुमति हासिल की और हाईकमान के दबाव में भ्रष्ट मंत्रियों को पुन: शपथ ग्रहण करा दी. स्वयं शिवराज इस बात से अप्रसन्न थे. नए पुनर्गठन से राज्य के कुछ क्षेत्रों की उपेक्षा की बात एक बार फिर उभर कर सामने आ गई. वहीं कुछ पूर्व मंत्रियों एवं प्रभावशाली विधायकों का मंत्रिमंडल में न आ पाना विद्रोह का कारण बन गया है. विभागों के वितरण में शिवराज ने गठन के समय की अपनी मजबूरी को अपने अधिकारों के ज़रिए दूर करने की कोशिश की, परंतु उन्हें विजय शाह जैसे मंत्री को प्रभारी प्रभार और नरोत्तम मिश्रा को अप्रभारी प्रभार की बागडोर सौंपनी ही पड़ी. सरताज सिंह वन एवं पर्यावरण विभाग लेकर जहां महत्वपूर्ण घोषित हुए हैं, वहीं अजय विश्नोई को उनके पूर्व कार्यकलापों के कारण कम महत्व का विभाग सौंपा गया है. उमाशंकर गुप्ता और लक्ष्मी नारायण शर्मा मंत्रिमंडल में सबसे प्रभावी बनकर उभरे हैं. भोपाल का प्रतिनिधित्व करने वाले गुप्ता की गृह विभाग संबंधी क्षमताओं पर संदेह व्यक्त किया जा रहा है. वहीं पिछली बार खनिज घोटाले में लिप्त रहे लक्ष्मी नारायण शर्मा को कई विभाग सौंपकर प्रभावशाली बनाना शिवराज की मजबूरी मानी जा रही है.

भाजपा हाईकमान, प्रदेश संगठन और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ आदि शिवराज सिंह को कठपुतली की तरह संचालित करने की कोशिश में रहते हैं. कहा जाता है कि प्रशासनिक अधिकारियों के स्थानांतरण की सूची का अंतिम निर्धारण मुख्यमंत्री कार्यालय के बजाय संगठन कार्यालय में होता है. विभिन्न तबादलों और पदस्थापनाओं में आर्थिक लेनदेन आम बात है. ज़िलों एवं मुख्यालय में स्थित विभिन्न कार्यालयों में चढ़ावे के बिना किसी भी फाइल का निपटारा संभव नहीं है. यही नहीं, केंद्र द्वारा दी जाने वाली धनराशि का उपयोग भी संबंधित मद में न करके अन्यत्र किया जाता है. विभिन्न कार्यक्रमों की परिपालन रिपोर्ट सही समय पर केंद्र को नहीं भेजी जाती. उपयोगिता प्रमाणपत्र भेजे जाने के मामले में राज्य सरकार का रिकॉर्ड बहुत ख़राब है. मंत्रिमंडल के पुनर्गठन के बाद उत्पन्न स्थितियों को देखते हुए शिवराज सिंह के राजनीतिक जीवन को लेकर क़यासों का दौर जारी है. कल तक जो सरकार बाहरी संकट से निपटने के लिए व्यूह रचना करती थी, वही आज अपनी ही पार्टी के असंतुष्ट नेताओं और कार्यकर्ताओं की नाराज़गी का शिकार बनकर कमज़ोर हो रही है.

feedback@chauthiduniya.com

देश की पुलिस व्यवस्था में सुधार के लिए लंबे समय से मांग होती रही है, लेकिन विभिन्न सरकारों के ढुलमुल रवैये के चलते आज तक ऐसा नहीं हो पाया.

पुलिस सुधार के वायदे पूरे नहीं हुए

सभी फोटो– *प्रभात पाण्डेय*

मुंबई पर आतंकी हमले की घटना को एक साल बीत चुका है. इस हमले की वजह से ही हम जुल्लु यादव, हेमंत करकरे और कई दूसरे बेहतरीन पुलिस अधिकारियों के बारे में जान सके. यह वारदात हमारे राजनीतिक वर्ग के घटिया चरित्र को भी सामने लाई. साथ ही उनके उन सहयोगियों को भी, जो इस चौंकाने वाली घटना पर फ़िल्म बनाने की योजना बना रहे थे. उस वक़्त विभिन्न लोग पुलिस संगठन में बदलाव की मांग कर रहे थे, अब वे या तो अपना जोश खो चुके हैं या फिर उस वक़्त झूठी मांग कर रहे थे. एक सेवानिवृत्त पुलिस अधिकारी ने विस्तृत चर्चा छेड़ी कि करकरे को किसने मारा? महाराष्ट्र के पूर्व एटीएस प्रमुख हेमंत करकरे ने हिंदूवादी आतंकवादियों के ख़िलाफ़ जो आरोपपत्र दाख़िल किए, उनसे भारत में आतंकवाद का वास्तविक और डरावना चेहरा सामने आया है. यह बात कई लोगों को सनसनीख़ेज़ लग सकती है.

कांग्रेस ने 2009 के चुनावी घोषणापत्र में बड़े-बड़े वायदे किए और उन्हें पूरा करने के लिए उसने इस दिशा में कुछ क़दम भी उठाए. बाद में सरकार ने अपने एजेंडे में अपराध और अपराधियों पर लगाम लगाने व आतंकवाद से निपटने के लिए राष्ट्रीय सुरक्षा एजेंसी की स्थापना, विभिन्न सुरक्षा एजेंसियों में ख़ाली पदों को भरने की प्रक्रिया, एक राष्ट्रीय ख़ुफ़िया संस्था की स्थापना, राष्ट्रीय आतंक निरोधी केंद्र की स्थापना, नक्सली क्षेत्रों में जवाबी कार्रवाई की व्यवस्था, पुलिस अधिकारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था, सीआरपीएफ़, असम राइफल्स, एनएसजी और बीएसएफ की शक्तियां बढ़ाने की बात को भी शामिल किया. सरकार ने उस समय जो वायदे किए थे, वे इस प्रकार हैं:

1. राजनीतिक कार्यपालिका और पुलिस प्रशासन के बीच एक स्पष्ट दूरी बनाना.
2. पुलिस बल की जवाबदेही को संस्थागत रूप से विकसित करना.
3. पुलिस सुधार की प्रक्रिया को सक्रिय तौर पर लागू किया जाएगा और आंतरिक सुरक्षा के लिए नागरिकों की भागीदारी भी सुनिश्चित की जाएगी. साथ ही सामुदायिक पुलिस को भी प्रोत्साहन दिया जाएगा.
4. आबादी के मुताबिक़ पुलिस बल में विविध समाज के लोगों के प्रतिनिधित्व को भी बढ़ावा दिया जाएगा.
5. बेहतर आवास और शिक्षा के मामले में पुलिस बल में प्रावधान किए जाएंगे.
6. आने वाली चुनौतियों से निपटने के लिए पुलिस बल में भर्तियों एवं उनके प्रशिक्षण को प्रोफेशनल और प्रभावशाली तरीक़े से लागू किया जाएगा.

लेकिन कांग्रेस के घोषणापत्र की तरह ये वायदे भी पूरे नहीं हो सके, जबकि सरकार ने बड़े ज़ोर-शोर से उक्त वायदे किए थे. एक नागरिक के तौर पर हम तुरंत बदलाव चाहते हैं. चाहे वह आतंकी हमले, पुलिस हिरासत में मौत, फ़र्ज़ी मुठभेड़ या पुलिस का बुरा बर्ताव हो, लेकिन जब तक हम स्वयं किसी परेशानी में न हो तो उसके बारे में न तो सोचना और न ही उससे किसी भी तरह जुड़ना चाहते हैं. आज़ादी के बाद से ही विभिन्न सरकारों ने पुलिस सुधार के बारे में कई सुझाव दिए हैं, लेकिन अभी तक इसका कोई नतीजा नहीं निकला है. इस साल 2009 के आम चुनाव मुंबई पर आतंकवादी हमलों की पृष्ठभूमि में संपन्न हुए और सत्ताधारी पार्टियों ने इस दिशा में कई उम्मीदें जगाईं, लेकिन सभी वायदे और उम्मीदें कहां खो गईं, किसी को पता नहीं. यहां तक कि पुलिस की जवाबदेही और पारदर्शिता या अच्छी व्यवस्था के लिए नागरिकों की भागीदारी का मुद्दा भी अंधेरे में खो गया है.

इस संदर्भ में जो सबसे बड़ी बाधा है, उससे सरकार भी भलीभांति वाक़िफ़ है. वह बाधा यह है कि अभी भी भारत में पुलिस बल का संचालन 1861 के अधिनियम के तहत किया जाता है. हालांकि यहां यह भी ज़िक्र किया जाना चाहिए कि गत यूपीए सरकार ने पुलिस विधेयक 2005 का मसौदा तैयार किया था, जिस पर किसी भी नागरिक समाज में या सार्वजनिक रूप से चर्चा नहीं हो सकी, जबकि मसौदा तैयार करने में तत्कालीन और सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारियों एवं चुनिंदा ग़ैर सरकारी संगठनों की मदद ली गई थी. इस मसौदे के आधार पर कई राज्य सरकारों ने क़ानून बनाया और उसे लागू भी किया. उक्त नए क़ानून पुराने क़ानूनों के नए अवतार हैं, जिन्हें अभी लोगों की आकांक्षाओं पर खरा उतरना है. ख़ासकर अल्पसंख्यक समुदाय और धार्मिक समूहों की कसौटियों पर, जो अक्सर पुलिस व्यवस्था के बुरे चरित्र का शिकार होते हैं. हालांकि इस संदर्भ में जो चिंता की बात है, वह है केंद्र सरकार में इच्छाशक्ति की कमी, क्योंकि फ़िलहाल केंद्र शासित प्रदेशों की कमान केंद्र के हाथ में है और इससे उसके अधिकार क्षेत्रों का दायरा भी घटेगा.

पुलिस को आम लोगों के साथ दोस्ताना रवैया अपनाना चाहिए, इस बदलाव की ज़रूरत 1902 में महसूस की गई थी. आपातकाल के बाद भी लोगों को ऐसा ही अहसास हुआ. उनका मानना था कि पुलिस सरकार का ही एक अंग है, जिसका दुरुपयोग शासकों द्वारा किया जाता है. सत्तारूढ़ पार्टियों ने भ्रष्टाचार और सुशासन लागू करने के बजाय अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए पुलिस व्यवस्था का इस्तोमाल किया.

पुलिस सुधार के अतीत की कहानियां

यह सच है कि 1861 का पुलिस अधिनियम विफल रहा है और यहां तक कि अंग्रेज़ों द्वारा भी एक पेशेवर पुलिस बल की ज़रूरत को महसूस किया गया. इस दिशा में गत सदी की शुरुआत में ही जब सरकार ने सर ए एच एल फ्रेज़र की अध्यक्षता में सन् 1902 में एक बड़ा क़दम उठाया, जिसका उद्देश्य व्यवस्था की जांच-पड़ताल कर उस पर सलाह देना था. आयोग ने कई सिफ़ारिशें कीं, लेकिन उस पर अमल नहीं किया गया या फिर उसे पूरी तरह नकार दिया गया. इस तथ्य को पूरी तरह नज़रअंदाज़ कर दिया गया कि संगठन 1861 में स्थापित पुलिस अधिनियम की कई बीमारियों से ग्रसित है. और, इस तरह औपनिवेशिक व्यवस्था में बना यह अधिनियम अभी भी अस्तित्व में है.

आज़ादी के बाद राजनीतिक व्यवस्था बदल गई, लेकिन पुलिस व्यवस्था उसी रूप में बनी रही. हालांकि पुलिस में बदलाव और सुधार की ज़रूरत को व्यापक तौर पर महसूस किया गया. 1960 के दशक के दौरान कई राज्य सरकारों ने आयोग का गठन किया, ताकि इन समस्याओं की पहचान की जा सके और उसमें सुधार हो सके. 1970 के दशक में भारत सरकार सक्रिय हुई और 1971 में पुलिस प्रशिक्षण के लिए एक समिति गठित की गई. उसके बाद 1977 में सरकार ने एक राष्ट्रीय पुलिस आयोग का गठन भी किया.

कुछ मसलों पर उत्साही क़दम उठाने के लिए सरकार को इसका श्रेय दिया जा सकता है. आपातकाल के दौरान प्रधानमंत्री ने जबरन अपनी शक्तियों को बढ़ाया, अभिव्यक्ति की आज़ादी पर अंकुश लगाया और जो इसके प्रति जागरूक थे, उन्हें जेल में बंद कर दिया. आगामी चुनाव में कांग्रेस को जनता पार्टी से हार मिली तो उन्होंने 1977 में शाह आयोग का गठन किया, जिसने पिछली सरकार के कदाचार और आपातकाल के दौरान पुलिस के ग़ैर ज़िम्मेदार रवैये की जांच की. नई सरकार ने 1977 में धर्मवीर की अध्यक्षता में राष्ट्रीय पुलिस आयोग (एनपीसी) का गठन किया, जिसका काम भारत में पुलिस व्यवस्था की कार्यशैली और नागरिकों के प्रति उनकी ज़िम्मेदारी तय करने संबंधी सलाह देना था. एनपीसी ने इस संदर्भ में रिपोर्टों की आठ शृंखलाएं पेश कीं और पुलिस सुधार, प्रशिक्षण तथा पुलिस-जनता के संबंधों के मामले में कई सिफ़ारिशें कीं. हालांकि जब कांग्रेस 1980 में वापस सत्ता में आई तो उसने राष्ट्रीय पुलिस आयोग को भंग कर दिया और उसकी सभी रिपोर्टों पर कड़ा ऐतराज़ भी जताया. भंग किए गए राष्ट्रीय पुलिस आयोग की महत्वपूर्ण सिफ़ारिशें कुछ इस तरह थीं:

- किसी राज्य के पुलिस प्रमुख का कार्यकाल एक निश्चित समय के लिए सुनिश्चित हो.
- कार्यात्मक स्वतंत्रता को प्रोत्साहन. भारत में यह आम बात है कि अधिकारियों का स्थानांतरण और बहाली सज़ा या पुरस्कार के तौर पर किया जाता है. नतीजतन, कई पुलिस प्रमुखों ने राजनीतिक दलों से अपनी साठगांठ बढ़ा ली है.
- पुलिस के कामकाज में किसी तरह का बाहरी दबाव नहीं होना चाहिए.
- हर राज्य में एक सुरक्षा आयोग की स्थापना की जाए.
- 1861 के पुलिस अधिनियम को नए क़ानून से बदला जाए.

यहां यह ध्यान देना बेहद दिलचस्प है कि पाकिस्तान जैसे देश ने 2002 में 141 साल पुराने पुलिस अधिनियम की जगह नए क़ानूनों को लागू किया. पाकिस्तान की सरकार ने बेहतर पुलिस व्यवस्था के लिए एक ऐतिहासिक फ़ैसला ले लिया है, तो भारतीय पुलिस व्यवस्था में सुधार और इसे आधुनिक बनाने में कौन सी रुकावटें सामने आ रही हैं?

डोयल मुखर्जी
feedback@chauthiduniya.com

(लेखिका अंतरराष्ट्रीय मामलों की विशेषज्ञ हैं)

आदिवासियों को सुधारने के लिए बनीं अलग बस्तियों को एकाग्रता शिविर कहा जाता था. अगर कोई आदिवासी जेल जाता था तो उसे सजा काटकर घर वापस आना नसीब होता था, पर एक बार इस सुधार बस्ती में आने के बाद यहां से वापसी संभव नहीं होती थी.

आदिवासी अपमान की ज़िंदगी जी रहे हैं

बिमल राय

11 नवंबर, 2009 को पश्चिम बंगाल के झाड़ग्राम में लगभग तीन हजार आदिवासियों ने अनुमंडल कार्यालय का घेराव किया. प्रशासन ने कहा कि पुलिस अत्याचार के ख़िलाफ़ बनी समिति के लोगों ने वहां पर अचानक हमला कर दिया और पुलिस को मजबूरन लाठीचार्ज करना पड़ा. हालांकि आदिवासी राजधानी एक्सप्रेस को बंधक बनाने के मामले में गिरफ़्तार किए गए लोगों की रिहाई की मांग कर रहे थे. लाठीचार्ज में दर्ज़नों लोग घायल हुए, जिनमें महिलाओं की संख्या ज्यादा थी. इसके विरोध में समिति ने 12 नवंबर से 72 घंटे के बंद का भी पालन किया.

पिछले साल भी नवंबर का ही महीना था, जब पुलिस ने मुख्यमंत्री के क़ाफ़िले के पास हुए विस्फोट के बाद दो स्कूली छात्रों सहित कई निर्दोष लोगों को गिरफ़्तार किया और उन पर जुल्म ढाया था. इसीलिए छत्रधर महतो को पुलिस अत्याचार के ख़िलाफ़ जन समिति के गठन के लिए मजबूर होना पड़ा. हम देख सकते हैं कि यह चिंगारी आज कितने भयानक लावे का रूप ले चुकी है. प्रशासन की धारणा बन गई है कि जंगल में रहने वाला हर आदिवासी माओवादियों का साथ दे रहा है. इसी चश्मे से प्रशासन को दिखा कि 11 नवंबर को झाड़ग्राम के आदिवासी हिंसा फैलाने आए थे. उन्हें एक तरह से हिंसक मान लिया गया है. पुलिस अत्याचार के सैकड़ों उदाहरण हैं.

वर्ष 1998, 10 फरवरी का दिन था. पुरुलिया के अकरबाइद निवासी बूधन सबर पत्नी श्यामली के साथ अपने मामा श्वसुर के घर जा रहे थे. रास्ते में पान ख़रीदने के लिए वे दोनों एक दुकान पर रुके. उसी समय स्थानीय बड़ाबाज़ार थाने के कांस्टेबल अशोक राय ने बूधन को पकड़ लिया और मोटरसाइकिल पर बैठाकर थाने ले गया. यही नहीं, पुरुलिया में हुई दो बस डकैतियों के सिलसिले में पुलिस ने उसे गिरफ़्तार कर लिया. कई दिनों बाद पुलिस उसे उसके घर की तलाशी के लिए लाई, जहां पुलिस ने दो पैंट पीस और एक कंबल बरामद किया. तलाशी के बाद पुलिस उसे साथ ले गई. ठीक सात दिनों बाद यानी 17 फरवरी 1998 को बूधन पुलिस लॉकअप में मर गया. पुलिस ने कहानी बनाई कि बूधन ने गले में गमछे का फंदा लगाकर आत्महत्या की है. हालांकि पुलिस अदालत में इसे प्रमाणित नहीं कर पाई, क्योंकि गमछा नया था. गिरफ़्तारी के समय पुलिस ने उसके घर से जो सामान बरामद किया था, उसकी सूची अदालत में पेश की गई थी, उसमें गमछा भी था. अदालत में भी यह बात प्रमाणित हो गई. दरअसल, बूधन सबर जनजाति का था, जिसे कभी क्रिमिनल ट्राइब के नाम से पुकारा जाता था.

एक उदाहरण छत्तीसगढ़ का लें. छत्तीसगढ़ के आदिवासियों पर सरकार, पुलिस व प्रशासन के अत्याचार की कहानियां भी कम नहीं हैं. यहां तक कि बीमार आदिवासियों की सेवा करने वाले मानवाधिकारवादी डॉ. विनायक सेन भी पुलिस उत्पीड़न से बच नहीं पाए. वर्ष 2006 में बीजापुर ज़िले के पोट्टूनूर गांव की 20 वर्षीय कूंबली, लीनगिरि गांव की 20 वर्षीय गंताल, दांतेवाड़ा ज़िले के भंडारपादार गांव की नाबालिग माधवी एवं 20 वर्षीय मकदम और सामसेटी गांव की मिदियम एवं सोदी आदि युवतियों के साथ सलवा जुडुम दल के सदस्यों ने बलात्कार किया था. लीनगिरि की एक संथाल महिला के साथ बलात्कार के बाद उसकी हत्या कर दी गई. उक्त सारे मामले अदालत में विचाराधीन हैं.

यह सब इसी आज़ाद भारत में हुआ है और हो रहा है. ब्रिटिश राज में तो अंग्रेजों ने इन्हें अपराधी जाति ही करार दिया था. इधर हिंदू भी इन्हें हेय नज़र से ही देखते थे. 1947 में आज़ादी मिलने के साथ ही जब पाकिस्तान बना तो हिंदुओं की नफ़रत आदिवासियों से हटकर मुसलमानों पर केंद्रित हो गई. ज़्यादातर हिंदुओं ने एक अलग संस्कृति वाले समुदाय के रूप में आदिवासियों को कभी स्वीकृति नहीं दी. छोटे-छोटे समुदायों में बंटे इन आदिवासियों के प्रति सवर्ण हिंदुओं की धारणा नकारात्मक कैसे और कब बनी, यह देखने की ज़रूरत है.

जब अंग्रेज भारत में आकर जम गए तो उन्होंने अपनी सुविधा के लिए कुछ ख़ास क़ानून बनाए. 1871 में ऐसे जो क़ानून बने, उनमें से एक था क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट. 12 अक्टूबर 1871 को बने इस क़ानून के तहत भारत की 150 जनजातियों को अपराधी जनजाति घोषित किया गया. 1865 के बाद भारत के वन क्षेत्रों को संरक्षित करने की प्रक्रिया शुरू हुई और वर्ष 1871 से 1900 के बीच भारत के ज़्यादातर वन संरक्षित घोषित कर दिए गए. इसके साथ ही आदिवासियों से वनों पर उनके प्राकृतिक अधिकारों को छीनने की प्रक्रिया शुरू हुई. जैसे ओडिशा के कंधमाल अंचल के जनशून्य हिस्से को छोड़कर 1600 वर्ग मील के उस इलाक़े को संरक्षित घोषित किया गया, जिसमें शबर आदिवासी रहते थे.

साम्राज्यवादी शासकों की ओर से आदिवासी जनजातियों को अपराधी मानने का रिवाज 19वीं सदी के प्रारंभ से ही शुरू हो गया था. शासकों को भी मालूम था कि सवर्ण हिंदू आदिवासियों एवं अनुसूचित जाति के लोगों को हेय, निकृष्ट और अपराधी मानते हैं. समझा जा सकता है कि शासकों को इन आदिवासियों को और शोषित करने तथा उन्हें सीमांत पर ठेलने में कोई विशेष बाधा नहीं दिखी. 1839 में लेफ्टीनेंट सी.ई. मिल्स ने एक बाउरी आदिवासी से पूछताछ के बाद अपने नोट में लिखा था कि बाउरी जाति के आदिवासी भारत के सबसे ख़तरनाक अपराधी प्रवृत्ति वाले समुदाय से हैं. एक अन्य आदिवासी जनजाति रोमेसिस को बांबे प्रेसिडेंसी गजट में अपराधी समुदाय का बताया गया. अंग्रेजों के दस्तावेजों में इस तरह के हज़ारों उदाहरण भरे पड़े हैं.

19वीं सदी के औपनिवेशिक भारत में ज़मींदारों एवं भू-स्वामियों का एक ऐसा वर्ग पैदा हुआ, जो अंग्रेज शासकों के जैसे-जैसे क़रीब हो रहा था, वैसे-वैसे उसमें ज़्यादा सुख-सुविधाएं उपभोग करने की अदम्य लालसा बढ़ती जा रही थी. निष्कंटक शासन के लिए अंग्रेज चाहते थे कि इस कुलीन वर्ग को हमेशा आदिवासियों के ख़िलाफ़ खड़ा रखा जाए. जहां तक दबदबे का सवाल था, अंग्रेजों के लिए शहरी भारतीयों पर नियंत्रण रखना आदिवासियों की तुलना में ज़्यादा आसान था. देश का क़ानून पूरी तरह मानने की आदत इस आज़ादी पसंद समुदाय में बहुत कम थी और यह समुदाय अपने अस्तित्व के लिए पूरी तरह शासक वर्ग पर निर्भर नहीं था. इस तरह अंग्रेज शासकों के लिए 150 जनजातियों की पीठ पर अपराधी होने का ठप्पा लगाना काफ़ी आसान था. हालांकि आंकड़े बता रहे थे कि जितने अपराध शहरों में हो रहे थे, उतने आदिवासी बहुल इलाक़ों मे नहीं होते थे. हक़ीक़त में शहरों में आदिवासियों की आबादी एक प्रतिशत से भी कम होती थी. जन्म से ही अपराधी होने की बदनामी को इसी तरह धीरे-धीरे मज़बूत आधार दिया गया.

आदिवासियों की आपराधिक मानसिकता को वैज्ञानिक आधार देने के लिए छानबीन हेतु अंग्रेजों ने इटली के डॉक्टर सिजर लोमब्रोसो के नेतृत्व में एक टीम गठित की. आदिवासी समुदाय के एक कुख्यात अपराधी के माथे की रूसी की परीक्षा कर इस चिकित्सक दल ने एक भयंकर निष्कर्ष निकाला कि आदिवासी जन्म से ही अपराधी मनोवृत्ति के हैं. इस नकारात्मक निष्कर्ष को धीरे-धीरे ऐसा प्रचारित किया गया कि पूरा आदिवासी समुदाय बदनाम हो गया. आदिवासियों पर काफ़ी लेखन कर चुकीं बांग्ला लेखिका अहिल्या बसुगुप्त ने बताया कि अवधारणा यह बनी कि डकैती रोकने के लिए केवल एक डकैत को सजा देने से काम नहीं होगा, बल्कि उसके पूरे परिवार, यहां तक कि पूरे समुदाय को दंडित करना होगा या सुधारना होगा.

क़ानून बनाते समय भी जो तथ्य पेश किए गए थे, उन्हें देखने पर प्रमाणित हो जाता है कि अंग्रेजों के अत्याचार की मिसालें गिनाना संभव नहीं है. आज के सबसे क्रूर क़ानून टाडा में भी किसी एक समुदाय को अपराधी करार देने का कोई प्रावधान नहीं है. इस तरह 1871 के इस क़ानून के पारित होने के बाद 1911 में इसमें संशोधन हुआ. इसमें कहा गया कि स्थानीय सरकार को यह रिपोर्ट करनी होगी कि कौन सी जनजाति अपराधी प्रवृत्ति की है. सरकार को यदि लगता है कि किसी जनजाति में अपराध करने का नशा है तो उसे अपराधी जनजाति घोषित कर दिया जाए. उन दिनों नशे के तौर पर अपराध करने वाले इन समुदायों के ख़िलाफ़ कार्रवाई के लिए सरकारी अफ़सरों को असीम अधिकार दिए गए थे और सुधार के लिए अलग-अलग जगहों पर बस्तियां बसाई गई थीं. उनकी संतानों को उनसे अलग कर किसी दूसरी बस्ती में रखा जाता था.

सरकार इन अभागे आदिवासियों को सुधारने के प्रति इतनी गंभीर व जागरूक थी कि उसने इनके लिए अलग बस्तियां बसाईं. इनके बच्चे अपराधी न बन जाएं, इसलिए उन्हें मां-बाप से अलग किया गया. यह भी प्रावधान था कि इस समुदाय के लोग जब क़ानून का उल्लंघन करें तो क्या सजा दी जाए. पहली बार क़ानून तोड़ने के लिए एक साल का सश्रम कारावास था. दूसरी बार के लिए दो साल की जेल और तीसरी बार या उससे भी ज़्यादा के लिए तीन साल के सश्रम कारावास की सजा थी. सरकारी नियम के बाहर अपराध करने पर सात साल कारावास की सजा थी और इस तरह का अपराध तीन बार करने पर देश निकाला देने का प्रावधान था. वर्ष 1871 के बाद एक और उल्लेखनीय घटना यह हुई कि अंग्रेज शासकों एवं मिशनरियों के संचालकों ने सुधार के नाम पर दया दिखाने का नाटक किया, ताकि इन आदिवासियों का चुपचाप धर्म परिवर्तन किया जा सके. यह सिलसिला आज भी चल रहा है, जिसका नतीजा कंधमाल हिंसा के रूप में हम देख सकते हैं.

वर्ष 1998, 10 फरवरी का दिन था. पुरुलिया के अकरबाइद निवासी बूधन सबर पत्नी श्यामली के साथ अपने मामा श्वसुर के घर जा रहे थे. रास्ते में पान ख़रीदने के लिए वे दोनों एक दुकान पर रुके. उसी समय स्थानीय बड़ाबाज़ार थाने के कांस्टेबल अशोक राय ने बूधन को पकड़ लिया और मोटरसाइकिल पर बैठाकर थाने ले गया.

आदिवासियों को सुधारने के लिए बनीं अलग बस्तियों को एकाग्रता शिविर कहा जाता था. अगर कोई आदिवासी जेल जाता था तो उसे सजा काटकर घर वापस आना नसीब होता था, पर एक बार इस सुधार बस्ती में आने के बाद यहां से वापसी संभव नहीं होती थी. बाक़ी जीवन इन्हें अंग्रेज शासित किसी दूसरे देश में भेज दिया जाता था. इसके अलावा इन्हें कोई ज़मींदार बेगार के लिए अपने यहां रख लेता था.

आंध्र प्रदेश के गुंटूर ज़िले की एक बस्ती में रखे गए येकुला जनजाति के लोगों के संबंध में लेखिका मीना राधाकृष्ण ने एक सरकारी दस्तावेज़ के हवाले से लिखा है कि वर्ष 1925 में इंडियन लीफ टोबैको कंपनी ने अपने कारखाने के लिए 50 फ़ीसदी श्रमिकों का इंतज़ाम इसी बस्ती से किया था. कारखाने के मैनेजर से क़ानून में ढिलाई देने के लिए कहा गया था, ताकि इन लोगों को श्रमिक के रूप में लगाया जा सके. तर्क दिया गया था कि इन श्रमिकों को लेने से काम ज़्यादा होगा और इनमें अपराध की भावना भी धीरे-धीरे कम हो जाएगी.

वर्ष 1871 के क़ानून में किसी ख़ास समुदाय के किसी भी व्यक्ति को सिर्फ़ इसलिए अपराधी मान लिया जाता था कि वह उस समुदाय का था. इसके लिए किसी साक्ष्य या प्रमाण की ज़रूरत नहीं थी. वर्ष 1902-03 में 1871 के क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट के संबंध में एक नई अवधारणा का सूत्रपात हुआ. इस क़ानून की ख़ामियों एवं इसके प्रयोग के संबंध में सरकार ने एक पुलिस कमीशन गठित किया. कमीशन ने 1911 में 1871 के क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट में संशोधन कर क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट 1911 बनाने को मजबूर किया. इस कमीशन ने

ट्राइब्स शब्द को नए रूप में परिभाषित किया, जिसका मतलब गिरोह या अंग्रेजी के गैंग के रूप में लिया गया. आयोग ने बताया कि इस आदिवासी समूह में जिन जनजातियों को शामिल किया गया है, वह तार्किक नहीं है, इसलिए इसे एक नया नाम देना ज़रूरी है. आयोग की सिफ़ारिश पर ही 1911 में एक नया क़ानून बनाया गया और तीन आदिवासी समुदायों को कथित रूप से अपराधी घोषित करने की जगह एक तार्किक मनोभाव अपनाया गया. जैसे इसमें यह भी कहा गया कि एक ख़ास जाति के लोग जो पहले अपराधी प्रवृत्ति के थे, अब सुधर गए हैं. इसमें यह भी कहा गया कि कई जातियां खेती के काम में पूरी तरह लग गई हैं.

कहा गया कि कुछ जनजातियां स्थायी रूप से एक जगह तो रहती हैं, पर दूर के इलाक़ों में जाकर अपराध को अंजाम देती हैं. तीसरे ख़ेमे में हैं यायावर आदिवासी, जो अभी भी अपराध में शामिल हैं, क्योंकि वे अपराध करने के बाद दूसरी जगह चले जाते हैं और कहीं भी स्थायी रूप से नहीं रहते. 1911 के संशोधन के बाद इस क़ानून और इसके फलितार्थ को देखते हुए आदिवासियों के प्रति एक नई सोच पैदा हुई. इसी का परिणाम था कि 1919 में इसे लेकर एक नए आयोग का गठन हुआ. आयोग ने कहा कि जेल जैसी होने के बावजूद आदिवासियों को सुधारने वाली बस्तियों का मक़सद इन लोगों से अपराध की भावना को दूर करना ही था. इस आयोग की सिफ़ारिश के बाद 1911 के क़ानून में भी संशोधन किया गया और क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट 1924 बनाया गया. 1924 के क़ानून के बाद आदिवासियों के प्रति शासकों के नज़रिए में थोड़ी नरमी आई.

वर्ष 1936 में जवाहरलाल नेहरू ने नेल्लोर में दिए गए अपने भाषण में कहा था, आम नागरिकों की स्वाधीनता का हनन करने वाले क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट की धाराओं को देखा है मैंने ..... क़ानून की किताब से इस पूरे क़ानून को हटाने के लिए हमें सचेष्ट होना चाहिए. किसी एक जाति या समुदाय को कभी भी अपराधी घोषित नहीं किया जा सकता. यह नीति समग्र सभ्य समाज के लिए असंगत है.

मद्रास हाईकोर्ट के पूर्व मुख्य न्यायाधीश एम वी सुब्बाराव ने 1938 में कहा था कि हमारे क़ानून की किताब को कलुषित करने वाला एक ही क़ानून है और वह है क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट, जो प्रगतिशील भारत के विवेकबोध व नीतिबोध को आहत करता है. 1939 में तिरुनलवेली में क्रिमिनल ट्राइब्स कांफ्रेंस का आयोजन हुआ. इस समारोह में इस क़ानून को ख़त्म करने की मांग की गई.

15 अगस्त 1947 को दो जातियों के आधार पर भारत का विभाजन हो गया और दो स्वतंत्र देश अस्तित्व में आए. प्रादेशिक सरकारें भारत सरकार के अधीन आईं. उस समय प्रशासन को यह महसूस हुआ कि अब क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट को बरक़रार रखने का कोई औचित्य नहीं है. इस तरह मद्रास सरकार ने वर्ष 1948 में इस क़ानून को रद्द कर दिया. इसी साल जनजातियों की जेल के रूप में बसाई गई छह बस्तियों में से दो को रद्द कर दिया गया. बंबई सरकार ने तो शुरू से ही इस क़ानून को शिथिल रखा था. उसने भी कई जातियों पर से अपराधी होने का कलंक धो दिया.

जारी...

feedback@chauthiduniya.com

असम में 1990 में आत्मसमर्पण का नाटक शुरू हुआ था, जब उल्फा उग्रवादियों ने लखीमपुर ज़िले के नाउबैचा में राज्य के तत्कालीन राज्यपाल लोकनाथ मिश्रा के सामने हथियार डाले थे.

आत्मसमर्पण का मतलब शांति की बहाली नहीं

दिनकर कुमार

पिछले डेढ़ दशकों से असम के दो पहाड़ी ज़िलों में दहशत फैला रहे उग्रवादी संगठन डी एच डी (जे) उर्फ़ ब्लैक विडो के आत्मसमर्पण के साथ ही दोनों ज़िलों में शांति बहाली की उम्मीद पैदा हुई है. नृशंसतापूर्वक नरसंहारों को अंजाम देने वाले इस उग्रवादी संगठन के हथियार डाल देने के बावजूद आम लोग उत्तर कछार पर्वतीय ज़िले और कार्बी आंग्लांग ज़िले में स्थायी रूप से शांति की बहाली को लेकर आश्वस्त नहीं हैं. असम की जनता इस तरह के आत्मसमर्पण और संघर्ष विराम के कई प्रसंगों को देख चुकी है और उसे इस बात का कड़वा अनुभव है कि हथियार डाल देने के बावजूद उग्रवादी संगठन हिंसा का रास्ता नहीं छोड़ पाते. दूसरी तरफ़ शांति प्रक्रिया के प्रति ढुलमुल रवैया अपनाकर सरकार भी उग्रवादियों को नए सिरे से हथियार उठाने का मौक़ा प्रदान करती है. जनता के मन में सवाल है कि डीएचडी (जे) के हथियार डाल देने से शांति क़ायम हो पाएगी या पहले की तरह उग्रवाद का आतंक छाया रहेगा.

असम में 1990 में आत्मसमर्पण का नाटक शुरू हुआ था जब उल्फा उग्रवादियों ने लखीमपुर ज़िले के नाउबैचा में असम के तत्कालीन राज्यपाल लोकनाथ मिश्रा के सामने आत्मसमर्पण किया था. उसके बाद से अब तक उल्फा के अलावा बीएलटी, बीआरएसएफ, बीटीएफ, एनडीएफबी, कार्बी, आदिवासी और धार्मिक अल्पसंख्यक उग्रवादी संगठनों ने आत्मसमर्पण किया है और काफ़ी तादाद में उग्रवादी शांति तथा स्थिरता के पास में मुख्यधारा में शामिल होते रहे हैं. जब कि आम जनता की राय है कि इस तरह के आत्मसर्पण से उग्रवाद की समस्या और भी अधिक गंभीर होती गई है और शांति तथा विकास की दिशा में आत्मसमर्पण का कोई सकारात्मक प्रभाव दिखाई नहीं पड़ा है. आत्मसमर्पण करने वाले ज़्यादातर पूर्व उग्रवादी हथियारों का धड़ल्ले से इस्तेमाल करते हैं, धन उगाही करते हैं, बाहुबल से सरकारी ठेके हासिल करते हैं और समाज में दहशत फैलाते हैं. पूर्व उग्रवादी विभिन्न राजनीतिक पार्टियों का संरक्षण लेकर आपराधिक गतिविधियां संचालित करते रहते हैं. ज़्यादातर पूर्व उग्रवादी अपने पुराने आदर्श और विचारधारा को भूल जाते हैं और अपने समुदाय के हित में क़दम उठाने की जगह एक मामूली गुंडे की तरह बर्ताव करने लगते हैं. ज़्यादातर उग्रवादियों ने अपने नेताओं की ग़ैर मौजूदगी में आत्मसमर्पण किए हैं, यही वजह है कि उनके पास शांति बहाली और स्थिरता के पक्ष में भविष्य की कोई कार्ययोजना नहीं होती और वे क़ानून को हाथ में लेकर समाज की शांति भंग करने में जुट जाते हैं.

दूसरी तरफ़ केंद्र सरकार तक़रीबन दो दशकों से पूर्वोत्तर के उग्रवाद परिदृश्य में आत्मसमर्पण के मामले में यथास्थिति की नीति अपनाती रही है. त्रिपुरा और मिज़ोरम में उग्रवादियों को मुख्यधारा में शामिल करने में सफलता मिलने के कारण केंद्र सरकार इसी तरीक़े को कारगर मानती रही है. लेकिन पूर्वोत्तर में विजय रांगखाल और लालडेंगा जैसे उग्रवादी नेता गिने-चुने ही हुए हैं जो हथियार डालने के बाद लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रणाली में शामिल होने में सफल हो पाए. केंद्र में सत्ता संभालने वाली सरकारों ने पूर्वोत्तर के उग्रवादी संगठनों में बातचीत करने में दिलचस्पी नहीं जताई. सरकार उग्रवाद को महज़ क़ानून व्यवस्था का मसला मानती रही जबकि विभिन्न जनजातियों के भीतर अपनी पहचान की सुरक्षा के मुद्दे पर असंतोष बढ़ता ही गया और नए-नए उग्रवादी संगठनों का जन्म होता रहा. केंद्र सरकार 1990 से पूर्वोत्तर में संघर्ष विराम और आत्मसमर्पण के ज़रिए विभिन्न उग्रवादी संगठनों को टुकड़ों में बांटने की रणनीति को अंजाम देती रही है. उग्रवादियों की ताक़त को बिखेरने की इस नीति का विपरीत परिणाम ही सामने आया है और उग्रवाद का मसला लगातार जटिल होता गया है. असम में उल्फा के एक गुट के हथियार डालने या एनडीएफबी के एक गुट के संघर्ष विराम में शामिल होने के बावजूद हिंसा पहले की तुलना में बढ़ती चली गई है. संघर्ष विराम के बावजूद उग्रवादियों को हिंसक गतिविधियों में शामिल होने से सरकार रोक नहीं पाई है.

केंद्र सरकार 1990 से पूर्वोत्तर में संघर्ष विराम और आत्मसमर्पण के ज़रिए विभिन्न उग्रवादी संगठनों को टुकड़ों में बांटने की रणनीति को अंजाम देती रही है. उग्रवादियों की ताक़त को बिख़ेरने की इस नीति का विपरीत परिणाम ही सामने आया और उग्रवाद का मसला लगातार जटिल होता गया.

आत्मसमर्पण या संघर्षविराम के बाद उग्रवादियों को सुख-सुविधाओं के साथ सरकार की तरफ़ से निर्धारित शिविरों में रखा जाता है. सरकार वार्ता प्रक्रिया को तेज़ी से आगे बढ़ाने में रुचि नहीं लेती और समय गुज़रने के साथ-साथ निर्धारित शिविरों में रहने वाले उग्रवादी हताश होकर या तो दोबारा जंगल की तरफ़ लौटने का फ़ैसला करते हैं या असामाजिक गतिविधियों में संलग्न हो जाते हैं.

सरकार की उदासीनता के चलते यथास्थिति की नौबत आ जाती है और एक गुट वार्ता के ख़िलाफ़ खड़ा हो जाता है. उल्फा का एक गुट वार्ता समर्थक बना हुआ है वहीं उसका मुख्य गुट अभी भी शांति प्रक्रिया से बाहर ही है. अगर डीएचडी (जे) के मामले में भी ऐसा ही होता है तो फिर शांति बहाली की उम्मीद कैसे की जा सकती है.

कार्बी समुदाय के लिए स्वशासी राज्य की मांग के आंदोलन के दौरान डीएचडी का जन्म हुआ था. एएसडीसी की अगुवाई में स्वशासी राज्य की मांग के लिए आंदोलन चलाया गया, उसी समय कार्बी उग्रवादी संगठन केएनपी और केपीएफ का जन्म हुआ. कार्बी समुदाय के वर्चस्व की राजनीति के ख़िलाफ़ दिमासा समुदाय के नेताओं ने डीएनएफ का गठन किया. 1995 में डीएनएफ मुख्यधारा में लौट आया और 1996 में डीएचडी का जन्म हुआ. 2003 में दिलीप नूनीजा के नेतृत्व में डीएचडी उग्रवादियों ने आत्मसमर्पण कर दिया. उसके बाद ज्वेल गारलोसा ने डीएचडी (जे) का गठन कर नरसंहारों का सिलसिला शुरू कर दिया. ऐसा ही घटनाक्रम बोड़ो इलाक़े में भी हुआ जहां एनडीएफबी के नेता धीरेन बोड़ो ने 2005 में भारत सरकार के साथ संघर्ष विराम समझौता किया. जिस तरह डीएचडी के ज्वेल गारलोसा गुट ने नरसंहारों के ज़रिए दहशत फैलाने का काम किया. उसी तरह एनडीएफबी के रंजन दैमारी गुट ने राज्य भर में सिलसिलेवार बम धमाकों को अंजाम दिया.

feedback@chauthiduniya.com

मेरी दुनिया.... मराठा मानुष ...धीर

मोतीलाल सैनी आज एक सफल कृषि उद्यमी हैं. पपीते की खेती ने उन्हें तरक्की और खुशहाली का रास्ता दिखाया. अब वह क्षेत्र के दूसरे किसानों के लिए पथ प्रदर्शक और प्रेरणा के स्रोत बन गए हैं.

बल्लभगढ़

पपीते ने दी पहचान

उमाशंकर मिश्र

राजस्थान में भरतपुर ज़िले की वैर तहसील के किसान यह अच्छी तरह से समझ चुके हैं कि परंपरागत फ़सलों की खेती से भोजन की आवश्यकता तो पूरी की जा सकती है, लेकिन बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य, शादी–ब्याह एवं अन्य ख़र्चों को पूरा करने के लिए इन पर निर्भर नहीं रहा जा सकता. शायद यही कारण था कि रेतीली धरती के इन रणबांकुरों ने अपने जीवन की बेहतरी के लिए परंपरागत खेती के साथ–साथ हॉर्टीकल्चर को भी अपनाना शुरू कर दिया. मौसमी परिस्थितियों, भूमि की गुणवत्ता और बाज़ार की स्थिति को ध्यान में रखकर स्थानीय किसान फल, फूल एवं औषधीय पौधों की खेती लंबे समय से कर रहे हैं, जिससे खेती से प्राप्त होने वाले मुनाफ़े में न केवल वृद्धि हुई है, बल्कि लोगों के जीवन स्तर में भी सुधार आया है. आज भरतपुर ज़िले की वैर तहसील की पहचान पपीता, अमरूद और नींबू समेत अनेक सब्ज़ियों के उत्पादन के लिए होने लगी है.

हालांकि बदलाव का सफ़र इतना आसान नहीं रहा. कई किसानों ने देखादेखी हॉर्टीकल्चर की शुरुआत तो कर दी, लेकिन उन्हें भारी नुक़सान उठाना पड़ गया. वैर तहसील के बल्लभगढ़ गांव के मोतीलाल सैनी का परिवार भी ऐसे ही किसान परिवारों में से एक था. मोतीलाल पिछले कई वर्षों से परंपरागत खाद्यान्न फ़सलों जैसे ज्वार, बाजरा और गेहूं आदि के साथ सब्ज़ियों की खेती कर रहे थे. छह वर्ष पूर्व मोतीलाल ने जब अपने खेत में पपीते की देसी क़िस्म लगाई तो ऐसा रोग लगा कि 10 बीघे ज़मीन में मात्र दो क्विंटल पपीते का ही उत्पादन हुआ. मोतीलाल और उनके पूरे परिवार की मेहनत तो निरर्थक गई ही, साथ ही खाद, कीटनाशक व दूसरे ख़र्चों का नुक़सान भी हुआ. मोतीलाल के अलावा दूसरे किसानों को भी पपीते में लगने वाली माथाबंदी

नामक इस बीमारी से भारी नुक़सान उठाना पड़ा. इससे ग़रीब किसानों की तो मानों कमर ही टूट गई.

मोतीलाल ने इस समस्या से निपटने के लिए स्वयंसेवी संस्था लुपिन ह्यूमन वेलफेयर एंड रिसर्च फाउंडेशन से संपर्क किया. वर्ष 2004 में संस्था ने गांव को हॉर्टीकल्चर की दृष्टि से संपन्न बनाने के लिए गोद ले लिया और काम शुरू हो गया. किसानों को पपीता उत्पादन की नवीन तकनीक की जानकारी दी गई एवं खेती के लिए आसान शर्तों पर ऋण भी उपलब्ध कराया गया. बल्लभगढ़ के दो किसानों को संस्था ने पपीते के हनीजू नामक क़िस्म के बीज उपलब्ध कराए. इस बीज के पौधों से किसानों को प्रति हेक्टेयर 80 हज़ार रुपये की अतिरिक्त आमदनी हुई. इसे देखकर अन्य किसानों का रुझान भी पपीते की खेती की ओर बढ़ने लगा.

मिश्रित खेती और उन्नत क़िस्म के बीज बने सहायक

संस्था के विशेषज्ञों ने मोतीलाल को पपीते के पौधों को बीमारियों से बचाने के लिए मिश्रित खेती शुरू करने और पपीते की परंपरागत क़िस्म के स्थान पर हाईब्रिड पीवीसी क़िस्म अपनाने की सलाह दी. इस क़िस्म की खेती से प्राप्त फल जल्दी ख़राब नहीं होते, फल अधिक समय तक सुरक्षित रहता है और बाहर से पीला दिखने वाला फल अंदर से लाल निकलता है. सबसे बड़ी बात यह कि इसे बाज़ार में अधिक मूल्य पर बेचा जा सकता है. इस क़िस्म में अधिक बीमारियां नहीं लगतीं, इसलिए कीटनाशकों के दुष्प्रभाव से भी यह अधिक सुरक्षित है. विशेषज्ञों के मुताबिक़, पपीते की पौध तैयार होने के बाद जिस खेत में पपीता बोना हो, उसमें गेहूं की बुआई करें और दिसंबर माह में गेहूं की फ़सल में बीच–बीच पपीते का पौधा लगा दें. ये पौधे बीमारी के साथ–साथ सर्दी और पाले आदि से भी सुरक्षित रहेंगे. जब गेहूं की फ़सल अप्रैल में कट जाए तो पौधों के बीच में ख़ाली पड़ी ज़मीन की जुताई कर उसमें मूंगफली की फ़सल भी ली जा सकती है. इस नवीन तकनीक को जब मोतीलाल ने अपनाया तो लागत काटकर उन्हें 50 हज़ार रुपये का फ़ायदा हुआ. उनकी कामयाबी से प्रेरित होकर गांव के दूसरे किसानों ने भी इसी तरीक़े को अपनाया. इतना सब कुछ केवल पिछले पांच वर्षों के दौरान पपीते की हाईब्रिड पीवीसी क़िस्म की खेती शुरू होने के बाद हुआ. पपीते की खेती में बीमारी आना एक समस्या रही है, किंतु पिछले कई वर्षों से लुपिन संस्था के कृषि विशेषज्ञ किसानों को 50 प्रतिशत अनुदान पर कीटनाशक दवाइयां उपलब्ध करा रहे हैं. इस वर्ष पपीता उत्पादक किसानों को अधिक उत्पादन देने वाले बीज भी उपलब्ध कराए गए हैं. इससे किसानों को कम क्षेत्रफल वाली ज़मीन पर भी अधिक उत्पादन मिलने की संभावना है.

क़रीब 500 घरों वाले बल्लभगढ़ के डेढ़ सौ से ज़्यादा परिवार पपीते समेत साग–सब्ज़ी एवं खाद्यान्नों की मिश्रित खेती में जुटे हुए हैं. बल्लभगढ़ में अकेले पपीते का ही 200 बीघा ज़मीन का रक़बा है. मोतीलाल बताते हैं कि आठ महीने में पपीते का पेड़ तैयार हो जाता है और तीन वर्षों तक फल देता है, लेकिन बेहतर उत्पादन के लिए यहां सिर्फ़ एक बार फल लिया जाता है. बकौल मोतीलाल, पहले हमें बीज, खाद, मौसमी परिस्थितियों एवं बाज़ार की सही जानकारी नहीं थी, जिससे अक़्सर खेती में नुक़सान उठाना पड़ता था. लेकिन, लुपिन संस्था के मार्गदर्शन से काम आसान हो गया और आज स्थिति यह है कि पपीते की खेती से परंपरागत खेती की तुलना में ढाई से तीन गुना फ़ायदा हो रहा है. मोतीलाल की गिनती आज इलाक़े के उद्यमी किसानों में की जाती है. खेतों में मज़दूरी करने वाला मोतीलाल पपीता व्यवसायी बनकर आज आसानी से प्रतिमाह दस से बारह हज़ार रुपये कमा रहा है. नेतराम सैनी भी बंटाई की पांच बीघे ज़मीन पर पपीते की खेती कर रहे हैं. वह प्रति बीघा 50 हज़ार रुपये बचत की उम्मीद कर रहे हैं. आज बल्लभगढ़ के आसपास के गोविंदपुरा, करावली, कटारियापुरा एवं मागरैन सहित आधा दर्ज़न गांवों में भी पपीते की खेती शुरू हो गई है.

नर्सरी एवं सब्ज़ियों की खेती से दोहरा लाभ

मोतीलाल वर्ष के शेष आठ महीनों में पपीता, नींबू, आम, कटहल, चीकू, अमरूद, हरड़ एवं अन्य फलदार वृक्षों के पौधे तैयार करते हैं. उनकी नर्सरी में तैयार किए गए पपीते के पौधों की इतनी मांग रहती है कि वे मात्र पांच दिन में बिक जाते हैं. उनके पौधों की मांग बल्लभगढ़ में ही नहीं, अपितु आसपास के अन्य क्षेत्रों में भी रहती है. उन्होंने 5 बीघे ज़मीन में बैंगन की भी खेती की है, जिससे उन्हें 2 लाख रुपये की आमदनी होने की उम्मीद है. पौधों की बिक्री से मोतीलाल औसतन प्रतिमाह तीन–चार हज़ार रुपए कमा लेते हैं. पपीते के पौधों की बिक्री वर्ष में तीन महीनों जुलाई, सितंबर व अप्रैल में अधिक होती है. बल्लभगढ़ के मोतीलाल की कड़ी मेहनत, सूझबूझ एवं उन्हें सही समय दिए गए उचित ज्ञान का ही परिणाम है कि उन जैसा एक साधारण किसान आज कृषि उद्यमी बन गया है.

जयपुर और दिल्ली में बल्लभगढ़ का पपीता

स्थिति यह है कि दिसंबर से अप्रैल तक प्रतिदिन क़रीब 500 मन पपीता भरतपुर, महुआ, जयपुर, कोसी, डीग और कामां के बाज़ारों में जाता है, जबकि कच्चे पपीते की हाथरस के चैरी उद्योग में भारी मांग रहती है. दिल्ली, आगरा, मथुरा एवं ग्वालियर जैसे बड़े बाज़ार भी 200 किलोमीटर की परिधि में हैं. अधिक उत्पादन के बावजूद बाहरी ख़रीददारों के सीधे बल्लभगढ़ न आने से स्थानीय किसानों को मंडियों तक के आवागमन का ख़र्च भी वहन करना पड़ता है. हालांकि गांव में ही कई गाड़ियां होने से कृषि उत्पादों के परिवहन में उत्पादकों को सहूलियत हो गई है. गांव में दोमट मिट्टी और पर्याप्त मीठा पानी स्थानीय किसानों के लिए वरदान बन गया है और उनकी समृद्धि में सहायक साबित हो रहा है.

feedback@chauthiduniya.com

मुंबई पर जब आतंकी हमला हुआ था तो राज ठाकरे और उनके साथी ग़ायब थे. इस महानगरी और राष्ट्र की प्रतिष्ठा को बचाया था उन बहादुर सिपाहियों ने, जिनकी प्रादेशिक पहचान आज तक किसी को मालूम नहीं है.

बाल श्रमिकों की हालत आज किसी से भी छुपी नहीं है. सरकारी और ग़ैर-सरकारी प्रयास किसी हद तक राहत पहुंचाते हैं, लेकिन समस्या का स्थायी समाधान बहुत ज़रूरी है.

राजनीतिक दलों के भटकाव की वजह

एम जे अकबर

हा र वह दुरी है, जो नींद के पहले सुनी जाने वाली कहानी से शुरू होकर सुबह उठने के अलार्म पर ख़त्म होती है. जहां यह कहानी एक सपना की बात है... से शुरू होता है और धीरे-धीरे कहानी सुनने वाला नींद की आगोश में आ जाता है, वहीं यह अलार्म एक नई सुबह की शुरुआत करता है. तीन राजनीतिक पार्टियां अपनी ही सफलता का शिकार हो चुकी हैं. इनके मुद्दों की मियाद पूरी हो गई है और अब वे अपने लिए नए मुद्दे खोज पाने में भी असमर्थ हैं.

भारतीय जनता पार्टी की कहानी सबसे सरल है. [illegible] यह पाकिस्तान से आए शरणार्थियों की पार्टी के तौर पर शुरू हुई थी, जिनका आर्थिक सशक्तिकरण और सामाजिक पुनर्वास यहां हुआ तथा अब उन विडंबनाओं से यह पार्टी मुक्त हो चुकी है, जिन्होंने इस पार्टी की मदद की. आपातकाल की तक़लीफ़ देने वाले ड्रामे और जनता पार्टी के दौर के बाद भाजपा ने आर्थिक ज़रूरतों की अपेक्षा ख़ुद को एक मनोवैज्ञानिक चैंपियन के तौर पर पुन:स्थापित किया. मंदिर आंदोलन एक बहुत बड़ा पुरस्कार लेकर आया, जिसमें अटल बिहारी वाजपेयी के करिश्मे ने और अधिक इज़ाफ़ा किया, जिससे यह पार्टी छह सालों तक केंद्र की सत्ता में बनी रही, लेकिन इस दौरान भारतीय मिज़ाज बदला. मनोवैज्ञानिक ज़रूरतों की जगह आर्थिक महत्वाकांक्षाएं प्राथमिक हो गईं. ख़ासकर उस वक़्त, जब अयोध्या में बाबरी मस्जिद की शहादत के बाद मंदिर आंदोलन अप्रासंगिक हो गया. [illegible] यह एक अहम तथ्य है कि भाजपा का घोषणापत्र लिखने वालों के ज़ेहन से राम मंदिर बनाने के वायदे दूर होते चले गए.

इस बदलाव में सभी पार्टियों की साठगांठ है. यहां तक कि ख़ुद को धर्मनिरपेक्ष कहने वाली पार्टियों ने भी मुसलमानों को इस विवाद में उलझने के लिए बढ़ावा दिया. यह सच है कि इन सबमें भाजपा एक भव्य मंदिर के निर्माण की पेशकश कर सकती है. हालांकि इसमें उतनी भावनात्मक शक्तियां नहीं रह गई हैं, जितनी कि मंदिर वहीं बनाएंगे! में थीं. [illegible] यदि भाजपा राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान फिर से हासिल करना चाहती है तो इसे एक दूसरा क्षितिज स्थापित करना होगा.

जब समाजवाद अप्रासंगिक हो गया तो मुलायम सिंह यादव ने स्वयं को एक सशक्त समाजवादी के तौर पर स्थापित किया. यह भी भाजपा की विचारधारा के एक विरोधी के रूप में. मुलायम का समाजवाद, लोहियावादी समाजवाद के विशिष्ट तत्वों और पिछड़ी जातियों के सशक्तिकरण से मिश्रित था. हालांकि जब विचारधाराएं लड़खड़ाने लगती हैं तो विरोधी विचारधाराएं मज़बूत नहीं हो सकतीं. मुस्लिम वोट के संदर्भ में समाजवादी पार्टी की यही समस्या है. जहां तक पिछड़ों की बात है, मंडल आयोग उनके लिए फ़ायदेमंद नहीं रहा. मंडल आयोग उन्हीं के लिए ख़ुशियां लेकर आया, जिनकी दुआएं 1990 में सुनी गईं. अब पिछड़ों की एक नई पीढ़ी को 21वीं सदी में समाधान की ज़रूरत है.

> **मुलायम सिंह का समाजवाद लोहियावादी समाजवाद के विशिष्ट तत्वों और पिछड़ी जातियों के सशक्तिकरण से मिश्रित था. हालांकि जब विचारधाराएं लड़खड़ाने लगती हैं तो विरोधी विचारधाराएं मज़बूत नहीं हो सकतीं. मुस्लिम वोट के संदर्भ में समाजवादी पार्टी की यही समस्या है.**

पिछली बार वामदलों के पास पिछले तीन दशकों की अपेक्षा बताने को कुछ नया था और उनका बंगाल में सत्ता में बने रहना उल्लेखनीय रहा. लेकिन बंगाली मुसलमान, जो लोकतांत्रिक चुनावों के लिए अहम होते हैं, अब वामपंथियों की नरम धर्मनिरपेक्षता से आज़िज आ चुके हैं. यह एक ऐसा धर्म निरपेक्ष है, जो सांप्रदायिक हिंसा से उनके जीवन को सुरक्षित रखता है, लेकिन उनकी आजीविका का इंतज़ाम भगवान भरोसे छोड़ दिया गया. बंगाल के मतदाता ने एक रोचक रणनीति अपनाई. काफ़ी हद तक वे निर्णायक विपक्ष की भूमिका में आ गए. सिर्फ़ ममता बनर्जी की तृणमूल कांग्रेस ही मतदाताओं के गुस्से को अपने पक्ष में करने के लिए अपना विस्तार कर सकती है, उसने उतना किया.

जब ममता राज्य में सत्ता ग्रहण करेंगी तो वह किस तरह से वैकल्पिक व्यवस्था गढ़ेंगी, इस पर न तो कोई आंतरिक संरचना तैयार की जा रही है और न ही गंभीरता से सोचा जा रहा है. [illegible]

अपनी असफलताओं के बावजूद मायावती उत्तर प्रदेश में बनी हुई हैं, क्योंकि वह अभी भी अपने जनाधार को जागरूक बनाए हुए हैं. दलितों का उद्धार अभी भी पूरा नहीं हुआ है और उनका जातिगत गठबंधन अभी भी प्रारंभिक अवस्था में है. मायावती स्थिरता का वायदा नहीं कर सकीं, इसलिए वह राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान नहीं बना सकीं, लेकिन क्षेत्रीय स्तर पर अभी भी वह एक आंदोलन हैं. उनका व्यक्तित्व उनकी राह में सबसे बड़ा रोड़ा साबित हो सकता है, लेकिन उनका एजेंडा अपनी जगह क़ायम है.

मुलायम सिंह यादव का भविष्य मुसलमानों की मांगों को पूरा करने की क्षमता और उनकी अगुवाई करने पर निर्भर करेगा. [illegible] लेकिन कांग्रेस के पास देने के लिए कुछ नया नहीं है.

उत्तर प्रदेश के मुसलमान जिसका आसरा देख रहे हैं, वह है उनकी राजनीतिक पहचान, ताकि वे जीविका और जीवन की सुरक्षा पा सकें. [illegible] इसी आधार पर अजीत सिंह ने पश्चिमी उत्तर प्रदेश में एक हरित प्रदेश का सपना देखा है. [illegible] साथ ही अलीगढ़ से देवबंद तक महत्वपूर्ण मुस्लिम शैक्षणिक संस्थाएं भी इसका अंग बनेंगी. [illegible]

feedback@chauthiduniya.com

जब तोप मुक़ाबिल हो

जसवंत सिंह से भाजपा डर रही है

संतोष भारतीय

ज सवंत सिंह संसद की लोक लेखा समिति के अध्यक्ष हैं. पहले वे भारतीय जनता पार्टी में थे, लेकिन भारतीय जनता पार्टी को वे पसंद नहीं आए. उन्होंने पार्टी के भीतर कई सवालों पर ऐसी राय रखी, जो न संघ को पसंद आई और न भाजपा को. जब लोकसभा में हार के बाद सवाल-जवाब का सिलसिला शुरू हुआ तो भाजपा के रणनीति बनाने वालों ने तय किया कि ऐसा शिकार करो कि आवाज़ें दब जाएं. जसवंत सिंह भी सवाल-जवाब करने वालों में एक थे. उसी समय उनकी जिन्ना को आधार बनाकर लिखी किताब सामने आई, जिसमें तथ्य दिए गए थे और फ़ैसला पाठकों पर छोड़ा गया था. जसवंत सिंह को शिकार बनाने का फ़ैसला हो गया. शुरुआत नरेंद्र मोदी ने की और समापन राजनाथ सिंह ने किया. जसवंत सिंह भाजपा के पहले ऐसे राष्ट्रीय नेता बन गए जिनसे न सफ़ाई पूछी गई, न बोलने का अवसर दिया गया, बस बाहर का दरवाज़ा दिखा दिया गया. उनका इतना सम्मान भी नहीं रखा, जितना एक सामान्य राजनैतिक सहयात्री का दूसरा राजनैतिक सहयात्री रखता है.

> **जसवंत सिंह भाजपा के पहले ऐसे राष्ट्रीय नेता बन गए जिनसे न सफ़ाई पूछी गई, न बोलने का अवसर दिया गया, बस बाहर का दरवाज़ा दिखा दिया गया. उनका इतना सम्मान भी नहीं रखा, जितना एक सामान्य राजनैतिक सहयात्री का दूसरा राजनैतिक सहयात्री रखता है.**

आख़िर कौन से सवाल जसवंत सिंह उठाते रहे, जिसकी वजह से उनका पहला शिकार वे बनें, जो भाजपा को अलोकतांत्रिक ढंग से चलाना चाहते हैं. शायद जसवंत सिंह कभी इस पर बोलें या लोगों को जब लगे, तब वे उनसे सवाल पूछें. लेकिन जसवंत सिंह से भारतीय जनता पार्टी को बड़ा ख़तरा हो सकता है. पहला ख़तरा यह कि जसवंत सिंह बता सकते हैं कि भारतीय जनता पार्टी की निर्णय प्रक्रिया में जनता के दु:ख-दर्द कितना महत्व रखते हैं. भारतीय जनता पार्टी की सोच में ग़रीब या किसान कहीं है भी या नहीं. भारतीय जनता पार्टी ने कुछ सहायक संगठन जैसे दलितों, अल्पसंख्यकों के बीच काम करने के लिए बना रखे हैं, उन संगठनों की राय कभी भाजपा नेतृत्व के सामने आती भी है या नहीं. जसवंत सिंह बता सकते हैं कि क्यों भाजपा का पूरा ज़ोर भावनात्मक सवालों पर रहता है. जसवंत सिंह यह भी बता सकते हैं कि अल्पसंख्यकों के ख़िलाफ़ आक्रामक भाषा बोलने के पीछे भाजपा नेताओं की क्या सोच और क्या समझदारी है.

जसवंत सिंह के पास इस बात की भी जानकारी होगी कि क्यों भाजपा नेतृत्व चुनावों में युवा मोर्चे के पदाधिकारियों तक को टिकट नहीं देता और क्यों सालों साल पार्टी का काम करने वाले लोगों से पूछता है कि वे कितना ख़र्च कर सकते हैं. जसवंत सिंह यह भी बता सकते हैं कि भाजपा में कितनी तानाशाही और फासिज़्म है तथा वह क्यों लोगों से दूर जा रही है. शायद जसवंत सिंह इनमें से किसी का जवाब न दें या फिर केवल कुछ का जवाब दें, लेकिन भाजपा का डर दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है. अभी पटना में पिछले महीने उनकी किताब को लेकर एक कार्यक्रम हुआ, जिसका आयोजन ग़रीब मुस्लिम संगठन ने किया था, जिसमें एक सांसद एजाज़ हसन भी शामिल थे. भाजपा के बीच यह नया डर पैदा हो गया है कि कहीं मुसलमानों का एक तबका जसवंत सिंह के साथ न जुड़ जाए. क्या जसवंत सिंह भाजपा के लिए सचमुच एक वास्तविक डर बन गए हैं या बन सकते हैं.

भाजपा के पास इस बात की जानकारी है कि जसवंत सिंह के पास देश भर से ऐसे संगठन संपर्क कर रहे हैं, जिनका रिश्ता राजनैतिक दलों से नहीं है, लेकिन उनकी चिंता राजनैतिक है. ये संगठन जसवंत सिंह को अपने यहां भाषण देने के लिए बुलाना चाहते हैं. भाजपा को डर है कि कहीं मध्यम वर्ग और उच्च मध्यम वर्ग जसवंत सिंह से न जुड़ने लगे. भाजपा को डर है कि अगर यह सिलसिला शुरू होता है तो फिर बार काउंसिल और प्रेस क्लब भी जसवंत सिंह को बुलाने लगेंगे और वे एक नए ध्रुवीकरण का केंद्र बनने की ओर बढ़ने लगेंगे.

भाजपा इस सिलसिले को तत्काल रोकना चाहती है. उसने एक रणनीति भी बनाई है. लोकसभा के मौजूदा सत्र में वह जसवंत सिंह पर पलटवार करेगी. जसवंत सिंह ने भाजपा की सांसद सुषमा स्वराज का यह अनुरोध नहीं माना कि वे लोक लेखा समिति की अध्यक्षता से इस्तीफ़ा दे दें. जसवंत सिंह का मानना है कि उन्हें लोकसभा अध्यक्ष ने नामित किया है, वे कहेंगी तो वे हट जाएंगे.

अब भाजपा चल रहे सत्र में जसवंत सिंह पर हमला करने जा रही है. वह किसी विषय पर व्हिप जारी करेगी. जसवंत सिंह भाजपा के टिकट पर चुने गए हैं, वे अभी निष्कासन में हैं, क़ानूनी तौर पर उन्हें पार्टी का व्हिप मानना होगा. भाजपा का मानना है कि वे लोकसभा सीट बचाने के लिए व्हिप मानेंगे और पार्टी लाइन पर सदन में वोट देंगे. इसके बाद पार्टी उनके ख़िलाफ़ निंदा अभियान चला देगी.

लेकिन हमें लगता है कि जसवंत सिंह भाजपा को ख़ुश होने का अवसर नहीं देंगे. यदि भाजपा व्हिप जारी करती है तो जसवंत सिंह उसके ख़िलाफ़ जाकर वोट करेंगे और अपनी सीट से त्यागपत्र दे देंगे. इसके बाद वे फिर उसी सीट से चुनाव लड़ेंगे. और तब जो चुनाव होगा, वह सालों पहले इलाहाबाद में हुए उपचुनाव जैसा होगा, जिसमें वी पी सिंह ने कांग्रेस को हराया था और देश में एक नया ध्रुवीकरण प्रारंभ हुआ था.

हमें यह देखने का मौक़ा मिलेगा कि भाजपा क्या हमला एक अकेले आदमी पर करती है और वह अकेला आदमी लोगों के सहारे उस हमले का कैसा मुंहतोड़ जवाब देता है.

संपादक
editor.chauthiduniya.com

राजनीति की असंवैधानिक शैली

रवि किशोर

नौ नवंबर, 2009 का दिन. भारत के लोकतांत्रिक इतिहास में यह दिन काले अध्याय के रूप में याद किया जाएगा. इस दिन राज ठाकरे की महाराष्ट्र नव निर्माण सेना के तथाकथित सदस्यों ने न केवल समाजवादी पार्टी के नवनिर्वाचित विधायक अबू आज़मी को हिंदी में शपथ ग्रहण करने से रोका, बल्कि उनके साथ धक्कामुक्की की और उन्हें थप्पड़ भी मारे. पूरा राष्ट्र सदन के बीचोबीच इस मंजर को देखकर हैरान रह गया. महाराष्ट्र नव निर्माण सेना के विधायकों की हरक़तों को देखकर वे स्वयं को असहाय महसूस कर रहे थे. मैं तो इसे मुंबई पर हुए 26/11 के आतंकी हमले से भी ज़्यादा बदतर कहूंगा. देश के लोगों ने 26/11 की घटना, जो कि देश की सुरक्षा के लिए एक बड़ा ख़तरा थी, को अपनी आंखों से देखा था. लेकिन तब लोगों को राहत इस बात की थी कि उस हमले और उसे अंजाम देने की साज़िश विदेश में रची गई, लेकिन भारतीय लोकतंत्र पर 9/11 के हमलावर दुर्भाग्य से हमारी ही व्यवस्था के हिस्से हैं. इसे विडंबना ही कहिए कि हम भारत के लोगों, जो ऐसे कट्टरपंथियों से प्रभावित हुए और जिन्होंने उन्हें अपना प्रतिनिधि चुना, के अलावा किसी ने भी उन्हें कठघरे में नहीं रखा. संकीर्ण सोच द्वारा निर्देशित होने के कारण हम ऐसे विघटनकारी तत्वों को परास्त करने और संदर्भों को राष्ट्रहित के वृहद फलक पर रखने में नाकाम रहे. हाल के कुछ दिन प्रदेश की राजनीति करने वाले क्षेत्रीय राजनीतिक क्षत्रपों के भड़काऊ भाषणों के गवाह रहे हैं. इस पूरे फसाद की जड़ राजनीति में बाल ठाकरे के उदय में निहित है. एक राजनीतिक शक्ति के रूप में उनका उत्थान विशुद्ध रूप से क्षेत्रीय भावनाओं के दोहन से हुआ है. बाल ठाकरे ने नफ़रत की जो आग सुलगाई थी, उनके भतीजे राज ठाकरे उस आग को हवा देकर और भी भड़का रहे हैं. क्षेत्रवादी संकीर्ण मानसिकता को उभार कर राज ठाकरे दिन-प्रतिदिन पहले से ज़्यादा आक्रामक होते जा रहे हैं. महाराष्ट्र विधानसभा में 9/11 को जो कुछ हुआ, वह बस इसकी ही परिणति है.

चिंता की सबसे बड़ी बात यह है कि भड़काऊ बयानबाजी कैंसर का रूप लेती जा रही है और मुख्यमंत्री भी भेदभाव पूर्ण बयान देकर संवैधानिक प्रावधानों के प्रति असम्मान प्रकट कर रहे हैं. कथित तौर पर मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री ने हाल ही में बयान दिया था कि बिहारी मज़दूरों को उनके राज्य में रोज़गार नहीं मिलना चाहिए. पूरे राष्ट्र ने उन्हें टीवी पर यह कहते हुए देखा था, लेकिन अगले ही दिन वह अपने बयान से मुकर गए. उन्होंने अपने ही कहे शब्दों को हजम कर डाला, लेकिन इसका नुक़सान तो हो ही चुका था. यहां तक कि दिल्ली की मुख्यमंत्री शीला दीक्षित, जो अपेक्षाकृत ज़्यादा परिपक्व और संतुलित नेता मानी जाती हैं, ने भी बिहार और उत्तर प्रदेश से आजीविका की तलाश में दिल्ली आने वाले लोगों के विरुद्ध बयानबाज़ी की.

ये तो बस कुछेक दृष्टांत हैं, लेकिन यह चलन बेहद चिंताजनक है. ऐसा इसलिए, क्योंकि ये राजनेता संवैधानिक भावना के अनुरूप व्यवहार की शपथ लेते हैं और व्यवहार इसके सर्वथा विपरीत करते हैं. नेताओं के इस तरह से बोलने और व्यवहार करने के पीछे वजह बस एक है, वोट की राजनीति. कई मामलों में संभव है कि नेता ऐसा कुछ भी करना न चाहते हों, जो संवैधानिक भावना के विरुद्ध हो, लेकिन वे तो बस स्थानीय जनभावना का दोहन कर वोट को अपने पक्ष में करना चाहते हैं. जबकि दूसरे मौक़ों पर इनका व्यवहार बिल्कुल अलग होता है. मैं तो इन्हें मनोविदालिता (स्कीजोफ्रेनिया) से ग्रस्त राजनेता कहूंगा. ऐसे राजनेता, जिनका व्यक्तित्व ही खंडित है. चुनाव आने पर ऐसे नेताओं को जब वोट की ज़रूरत होती है, तब ये ज़मीन पर साष्टांग बिछ जाते हैं और लोगों से समर्थन की अपेक्षा रखते हैं. हां, ठाकरे बंधुओं को आप अपवाद मान सकते हैं.

मुंबई पर जब आतंकी हमला हुआ था तो राज ठाकरे और उनके मराठी मानुष कहां थे? इस महानगर और राष्ट्र की प्रतिष्ठा को उन बहादुर कमांडो ने बचाया, जिनकी प्रादेशिक पहचान के बारे में किसी को अब भी कुछ पता नहीं है. मनसे और उनके तथाकथित मराठी मानुष अपनी मुंबई को बचाने सामने क्यों नहीं आए? हिंदी में बात करने वाले कमांडो को उन्होंने वापस जाने को क्यों नहीं कहा? आख़िर क्यों दिल्ली की मुख्यमंत्री शीला दीक्षित बिहार एवं उत्तर प्रदेश के लोगों से समर्थन और वोट पाने की अपेक्षा रखती हैं तथा बिहार के लोगों को चुनाव में पार्टी का टिकट भी देती हैं? हमें उनसे इसका जवाब चाहिए.

अब इसे क्या कहेंगे कि हिंदी में शपथ ग्रहण के मुद्दे पर जो विधायक महाराष्ट्र विधानसभा में समाजवादी पार्टी के विधायक अबू आज़मी से धक्कामुक्की कर रहे थे, विभिन्न चैनलों पर अपनी शर्मनाक हरक़त को सही ठहराने के लिए हिंदी में ही दलील देते देखे गए. वे इस बात का संकल्प क्यों नहीं लेते कि उन्हें जो कुछ भी कहना है, उसे मराठी में ही कहेंगे?

आइए, इस संदर्भ में संवैधानिक प्रावधान का मूल्यांकन करें. भारतीय संविधान में इस मुद्दे पर ज़रा भी संशय नहीं है, सब कुछ स्पष्ट है. भारतीय संविधान की शुरुआत प्रस्तावना से होती है और प्रस्तावना में ही नागरिकों को अवसर व प्रस्थिति की समानता और विचार व अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उल्लेख है. संविधान में वर्णित मौलिक अधिकार स्वयं में पवित्र भावना को समेटे हैं और संविधान का मूल आधार हैं. मौलिक अधिकार स्पष्ट रूप से रोज़गार के अवसर और समानता की गारंटी देते हैं. संविधान के अनुच्छेद 16 में रोज़गार के समान अवसर उपलब्ध कराने और समानता की गारंटी की बात कही गई है. संविधान धर्म, नस्ल, जाति और जन्म स्थान के आधार पर नागरिकों से कोई भेदभाव नहीं करेगा. संविधान के अनुच्छेद 15 में यह बात कही गई है. ठीक इसी तरह संविधान का अनुच्छेद 19 नागरिकों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता देता है.

संविधान के खंड चार-ए में नागरिकों के मूल कर्तव्यों का उल्लेख है. भारत की एकता, अखंडता और संप्रभुता अक्षुण्ण रखने, धार्मिक-भाषायी और क्षेत्रीय विविधता वाले देश में आपसी भाईचारे को बढ़ावा देने के लिए नागरिकों से मूल कर्तव्यों के पालन की अपेक्षा की गई है. उनसे यह भी अपेक्षा की गई है कि वे महिलाओं के सम्मान की रक्षा करेंगे. जहां तक आधिकारिक भाषा का सवाल है तो भारतीय संविधान के खंड 17 का अनुच्छेद 343 बताता है कि संघ की राजभाषा हिंदी होगी और लिपि देवनागरी. राजकाज में भारतीय अंकों के अंतरराष्ट्रीय रूप के इस्तेमाल का उल्लेख है. इसके अलावा संविधान के अनुच्छेद 351 में लिखा गया है कि हिंदी का प्रचार-प्रसार संघ की ज़िम्मेदारी होगी, ताकि भारत की बहुरंगी संस्कृति में यह अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके. संविधान के अनुच्छेद 120 में ज़िक्र है कि संसदीय कार्यवाही की भाषा हिंदी या अंग्रेजी होगी. अनुच्छेद 210 में राज्य विधानसभा की कार्यवाही की भाषा क्या होगी, इस बारे में उल्लेख है. इसमें स्पष्ट तौर पर कहा गया है कि राज्य विधानसभा की कार्यवाही हिंदी, अंग्रेजी या उस राज्य की आधिकारिक भाषा में होगी. उपरोक्त संवैधानिक प्रावधानों से यह बात पूरी तरह साफ़ है कि किसी को भी यह अधिकार नहीं है कि वह किसी को हिंदी में शपथ ग्रहण से रोके और किसी को भी देश के किसी भी हिस्से में रोज़गार या आजीविका से मना करे. विशेष प्रावधान वाले राज्य जैसे जम्मू और कश्मीर इसके अपवाद हैं.

अगर कोई भी संवैधानिक भावना का उल्लंघन करता है तो स्पष्ट रूप से उसकी निंदा की जानी चाहिए, चाहे वह किसी भी राजनीतिक दल से संबद्ध क्यों न हो. लेकिन दुर्भाग्यवश ऐसा हो नहीं रहा है. यहां तक कि प्रमुख राजनीतिक दल भी वोट बैंक की राजनीति को ही ध्यान में रखकर व्यवहार करते हैं. राजनीतिक आंदोलन के साथ-साथ इसके समर्थन में वैधानिक प्रावधानों की भी ज़रूरत है, ताकि क़ानून तोड़ने वालों को फास्ट ट्रैक कोर्ट की तर्ज पर दंडित किया जा सके. बल्कि होना तो यह चाहिए कि चुनाव आयोग को ऐसे दलों के चुनाव लड़ने पर प्रतिबंध लगा देना चाहिए. अगर कड़े क़दम नहीं उठाए गए तो यह भारतीय सामाजिक ढांचे व राजनीति और अंतत: लोकतंत्र की बुनियाद को तहस-नहस कर देगा.

(लेखक सुप्रीम कोर्ट के वकील हैं)

feedback@chauthiduniya.com

बाल मज़दूरी देश के लिए अभिशाप

सौमित्र मोहन

य ह माना जाता है कि भारत में 14 साल के बच्चों की आबादी पूरी अमेरिकी आबादी से भी ज़्यादा है. भारत में कुल श्रम शक्ति का लगभग 3.6 फ़ीसदी हिस्सा 14 साल से कम उम्र के बच्चों का है. हमारे देश में हर दस बच्चों में से 9 काम करते हैं. ये बच्चे लगभग 85 फ़ीसदी पारंपरिक कृषि गतिविधियों में कार्यरत हैं, जबकि 9 फ़ीसदी से कम उत्पादन, सेवा और मरम्मती कार्यों में लगे हैं. सिर्फ़ 0.8 फ़ीसदी कारखानों में काम करते हैं.

आमतौर पर बाल मज़दूरी अविकसित देशों में व्याप्त विविध समस्याओं का नतीजा है. भारत सरकार दूसरे राज्यों के सहयोग से बाल मज़दूरी ख़त्म करने की दिशा में तेज़ी से प्रयासरत है. इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए सरकार ने राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना (एनसीएलपी) जैसे महत्वपूर्ण क़दम उठाए हैं. आज यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि इस परियोजना ने इस मामले में काफ़ी अहम कार्य किए हैं. इस परियोजना के तहत हज़ारों बच्चों को सुरक्षित बचाया गया है. साथ ही इस परियोजना के तहत चलाए जा रहे विशेष स्कूलों में उनका पुनर्वास भी किया गया है. इन स्कूलों के पाठ्यक्रम भी विशिष्ट होते हैं, ताकि आगे चलकर इन बच्चों को मुख्यधारा के विद्यालयों में प्रवेश लेने में किसी तरह की परेशानी न हो. ये बच्चे इन विशेष विद्यालयों में न सिर्फ़ बुनियादी शिक्षा हासिल करते हैं, बल्कि उनकी रुचि के मुताबिक़ व्यवसायिक प्रशिक्षण भी दिया जाता है. राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना के तहत इन बच्चों के लिए नियमित रूप से खानपान और चिकित्सकीय सहायता की व्यवस्था है. साथ ही इन्हें एक सौ रुपये मासिक वजीफ़ा दिया जाता है.

ग़ैर सरकारी संगठनों या स्थानीय निकायों द्वारा चलाए जा रहे ऐसे स्कूल इस परियोजना के अंतर्गत अपना काम भलीभांति कर रहे हैं. हज़ारों बच्चे मुख्य धारा में शामिल हो चुके हैं, लेकिन अभी भी कई बच्चे बाल मज़दूर की ज़िंदगी जीने को मजबूर हैं. समाज की बेहतरी के लिए इस बीमारी को जड़ से उखाड़ना बहुत ज़रूरी है. एनसीएलपी जैसी परियोजनाओं के सामने कई तरह की समस्याएं हैं. यदि हम सभी इन समस्यायों का मूल समाधान चाहते हैं तो हमें इन पर गहनता से विचार करने की ज़रूरत है. इस संदर्भ में सबसे पहली ज़रूरत है 14 साल से कम उम्र के बाल मज़दूरों की पहचान करना. आख़िर वे कौन से मापदंड हैं, जिनसे हम 14 साल तक के बाल मज़दूरों की पहचान करते हैं और जो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी मान्य हों? क्या हमारा तात्पर्य यह होता है कि जब बच्चा 14 साल का हो जाए तो उसकी देखभाल की जिम्मेदारी राज्य की हो जाती है? हम जानते हैं कि ग़रीबी में अपना गुज़र-बसर कर रहे बच्चों को परवरिश की ज़रूरत है. कोई बच्चा जब 14 साल का हो जाता है और ऐसे में सरकार अपना सहयोग बंद कर दे तो मुमकिन है कि वह एक बार फिर बाल मज़दूरी के दलदल में फंस जाए. यदि सरकार ऐसा करती है तो यह समस्या बनी रह सकती है और बच्चे इस दलदल भरी ज़िंदगी से कभी बाहर ही नहीं निकल पाएंगे. कुछ लोगों का मानना है और उन्होंने यह प्रस्ताव भी रखा है कि बाल मज़दूरों की पहचान की न्यूनतम आयु बढ़ाकर 18 साल कर देनी चाहिए. साथ ही सभी सरकारी सहायताओं मसलन मासिक वजीफ़ा, चिकित्सा सुविधा और खानपान का सहयोग तब तक जारी रखना चाहिए, जब तक कि बच्चा 18 साल का न हो जाए.

> **कई सरकारें बाल मज़दूरों की सही संख्या बताने से बचती हैं. ऐसे में वे जब विशेष स्कूल खोलने की सिफ़ारिश करती हैं तो उनकी संख्या कम होती है, ताकि उनके द्वारा चलाए जा रहे विकास कार्यों और कार्यकलापों की पोल न खुल जाए. यह एक बेहद महत्वपूर्ण पहलू है और आज ज़रूरत है कि इन सभी मसलों पर गहनता से विचार किया जाए.**

फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

मौजूदा नियमों के मुताबिक़, जब बच्चा मुख्य धारा के स्कूलों में दाख़िला ले लेता है तो ऐसा माना जाता है कि मासिक सहायता बंद कर देनी चाहिए. जबकि बच्चे या उसके माता-पिता नहीं चाहते हैं कि वित्तीय सहायता बंद हो. ऐसे में उनका अकादमिक प्रदर्शन नकारात्मक रूप से प्रभावित होता है. यही वजह है कि हर कोई सोचता है कि जब बच्चा मुख्य धारा के स्कूल में प्रवेश कर जाए तो उसके बाद भी उसे सहायता मिलती रहनी चाहिए.

आख़िरकार अतिरिक्त पैसे के लिए ही तो माता-पिता अपने बच्चों से मज़दूरी करवाते हैं. इसीलिए किसी भी तरह आर्थिक सहायता जारी रहनी चाहिए. यह तब तक मिलनी चाहिए, जब तक कि वह बच्चा पूर्ण रूप से मुख्य धारा में शामिल होने के क़ाबिल न हो जाए. हालांकि पुनर्वास पैकेज की पूरी व्यवस्था की गई है, फिर भी बच्चे के माता-पिता सरकारी सुविधाओं के हक़दार नहीं माने गए हैं. ऐसे में हर किसी को यह लगता है कि इस संदर्भ में एक सामान्य नियम होना चाहिए, ताकि ऐसे लोगों के लिए एक विशेष वर्ग निर्धारित हो सके. जैसे एससी, एसटी, ओबीसी, सैनिकों की विधवाओं, पूर्व सैनिक और अपाहिज लोगों के लिए एक अलग वर्ग निर्धारित किया जा चुका है.

बाल श्रमिकों की पहचान के संबंध में एक दूसरी समस्या सामने आई है, वह है उम्र का निर्धारण. इस परियोजना ने चाहे जो कुछ भी किया है, लेकिन कम से कम यह बाल मज़दूरी के संदर्भ में पर्याप्त जागरूकता लाई है. अब यह हर कोई जानने लगा है कि 14 साल के बच्चे से काम कराना एक अपराध है. इसीलिए आज जब कोई बाल मज़दूरी की रोकथाम को लागू करना चाहता है तो एक बच्चा ख़ुद अपनी समस्याओं को हमें बताता है. उसके मुताबिक़, काम करने की न्यूनतम आयु 14 साल से कम नहीं होनी चाहिए. लेकिन इसकी जांच-पड़ताल का कोई उपाय नहीं है. ऐसे में हर कोई ऐसे बच्चों के पुनर्वास के लिए ख़ुद को असहाय महसूस करता है. ये बच्चे न तो स्कूल जाते हैं और न ही इनके जन्म का कोई प्रमाणिक रिकॉर्ड होता है. इसीलिए ये कहीं से भी अपने जन्म प्रमाणपत्र का इंतज़ाम कर लेते हैं और लोगों को उसे मानने के अलावा कोई विकल्प भी नहीं होता. लोगों को यह भी लगता है कि माता-पिता द्वारा बच्चों को काम करने की छूट देने या उनके कारखानों में काम करने पर प्रतिबंध लगना चाहिए, क्योंकि माता-पिता द्वारा काम पर लगाए जाने वाले ऐसे बच्चों की तादाद भी काफ़ी अधिक है. इन बच्चों को छोटी उम्र में ही काम पर लगा दिया जाता है और ऐसे लोगों की वजह से ही इन बच्चों पर नकारात्मक असर पड़ता है.

एक बार फिर कहना होगा कि इन विशिष्ट स्कूलों में दिए जाने वाले व्यवसायिक प्रशिक्षणों में भी कुछ ख़ामियां हैं. हालांकि मौजूदा नियमों के मुताबिक़ व्यवसायिक प्रशिक्षण का प्रावधान तो है, लेकिन इसके लिए धन का अलग से आवंटन नहीं होता है, जिससे इस तरह के कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक चलाने में कई मुश्किलें आती हैं. बाल मज़दूरी ख़त्म करने और व्यवसायिक प्रशिक्षण का लक्ष्य हासिल करने के लिए सबसे पहले हमें उपर्युक्त पहलुओं को समझना बेहद ज़रूरी है. व्यवसायिक प्रशिक्षण के दौरान जिन उत्पादों का निर्माण होता है, उनका विपणन यदि ठीक ढंग से हो तो उसकी लागत पर आने वाले ख़र्च को हासिल किया जा सकता है. लेकिन यह सब परियोजना विशेष, उसके विस्तार और उत्पाद की गुणवत्ता पर निर्भर करता है. साथ ही यह परियोजना का कार्यान्वयन करने वाले व्यक्ति पर भी निर्भर करता है कि वह इन सबका प्रचार-प्रसार ठीक ढंग से कर पा रहा है या नहीं.

यह देखने में आया है कि बाल मज़दूरी रोकने संबंधी नियम बन चुके हैं, लेकिन अभी भी इसे ज़मीनी स्तर पर लागू नहीं किया गया है. बाल मज़दूरी को बढ़ावा देने वाले ख़ुद समाज के ग़रीब तबके से आते हैं, इसलिए ऐसे लोगों को हिरासत में लेने या दंडित करने के प्रति भी हमारी कोई रुचि नहीं दिखती. जहां लोग बाल मज़दूरी से परिचित होते हैं, वे इस अपराध से बच निकलने में सफल हो जाते हैं. अत: हमें यहां सुनिश्चित करने की ज़रूरत है कि बाल श्रम अधिनियम (निषेध एवं विनियमन) को सही मायनों में लागू किया जा रहा है या नहीं.

यह भी देखा जा रहा है कि जिन बाल मज़दूरों को मुक्त कराया जाता है, उनका पुनर्वास जल्द नहीं हो पाता, नतीजतन वे फिर इस दलदल में फंस जाते हैं. ऐसे में हमें इसके ख़िलाफ़ कड़े क़दम उठाने की आवश्यकता है. साथ ही 20 हजार रुपये की राशि एक बाल मज़दूर के पुनर्वास के लिए बेहद ही मामूली राशि है, जिसे बढ़ाए जाने की भी ज़रूरत है. ज़मीनी स्तर पर पुनर्वास को सही ढंग से लागू करने के लिए वित्तीय सहायता के साथ-साथ एक बेहतर पुनर्वास ख़ाका भी बनाया जाना चाहिए.

कई सरकारें बाल मज़दूरों की सही संख्या बताने से बचती हैं. ऐसे में वे जब विशेष स्कूल खोलने की सिफ़ारिश करती हैं तो उनकी संख्या कम होती है, ताकि उनके द्वारा चलाए जा रहे विकास कार्यों और कार्यकलापों की पोल न खुल जाए. यह एक बेहद महत्वपूर्ण पहलू है और आज ज़रूरत है कि इन सभी मसलों पर गहनता से विचार किया जाए. यदि सरकार सही तस्वीर छुपाने के लिए कम संख्या में ऐसे स्कूलों की सिफ़ारिश करती है तो यह नियमों को लागू करने एवं बाल श्रमिकों को समाज की मुख्य धारा में जोड़ने की दिशा में एक गंभीर समस्या और बाधा है. जब तक पर्याप्त संख्या में संसाधन उपलब्ध नहीं कराए जाएंगे, ऐसी समस्याओं से निपटना मुश्किल ही होगा.

यहां बाल श्रम से निपटने की दिशा में न सिर्फ़ नए सिरे से सोचने की आवश्यकता है, बल्कि इसके लिए कार्यरत विभिन्न परियोजनाओं को वित्तीय सहायता आवंटित करने की भी ज़रूरत है. कुछ मामलों में बाल श्रमिकों की पहचान की ज़रूरत तो नहीं है, लेकिन इन परियोजनाओं में कुछ बुनियादी संशोधन की आवश्यकता ज़रूर है. इस देश से बाल मज़दूरी मिटाने के लिए अधिक समन्वित और सहयोगात्मक रवैया अपनाने की सख्त आवश्यकता है.

(लेखक प. बंगाल में आईएएस अधिकारी हैं. आलेख में व्यक्त विचार उनके अपने हैं और इनका सरकार के विचारों से कोई संबंध नहीं है.)

feedback@chauthiduniya.com

आयोग के गठन का औचित्य

रंगनाथ मिश्र आयोग की रिपोर्ट के संदर्भ में सरकार के रवैये पर आधारित आवरण कथा ... रिपोर्ट झूठी है पढ़ी. अच्छा लगा कि आपने इतनी खूबसूरती से व्यवस्था को न सिर्फ आईना दिखाया, बल्कि जनसाधारण को भी ख़बरदार किया. हमारी व्यवस्था अक्सर किसी गंभीर मसले पर पहले एक आयोग गठित करती है, फिर उसका कार्यकाल किस्तों-किस्तों में बढ़ाती जाती है. और, जब आयोग एक लंबे कार्यकाल के बाद अपनी आख्या देता है, मामले की सच्चाई सामने लाता है, सुधार की सिफारिशें करता है तो सरकार उसकी समूची रिपोर्ट को ही हजम करने का मन बना लेती है. यह दुर्भाग्य ही वह कारण है, जिसके चलते किसी गंभीर मामले का सालोंसाल निराकरण नहीं हो पाता है. आखिर किसी आयोग के गठन का क्या औचित्य है और ऐसा कब तक चलेगा?

निशीत शर्मा, *कानपुर, उत्तर प्रदेश.*

सटीक टिप्पणी

9-15 नवंबर के अंक की संपादकीय में सही कहा गया है कि इंदिरा जी के साथ-साथ उनके कामों को भी याद किया जाना चाहिए. यह भी सही है कि वर्तमान शासक वर्ग जनता की आवाज सुनने की परंपरा को भूल चुका है या फिर सुनना ही नहीं चाहता. किसान, मजदूर, नौकरीपेशा, बेरोजगार और युवा वर्ग की अपनी-अपनी कई दिक्कतें हैं, लेकिन उनकी ओर किसी का भी ध्यान नहीं है.

रोम जलता है तो जलता रहे, नीरो को अपनी बांसुरी के अलावा कभी कुछ दिखा भी है? बड़े और महान लोगों को याद करने की सिर्फ रस्म अदायगी की जा रही है. जबकि उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर समान रूप से चर्चा होनी चाहिए, ताकि नई पीढ़ी को एक सार्थक संदेश व सीख मिले. लेकिन, ऐसा नहीं हो रहा है.

राजेश्वर सहाय, *इंदौर, मध्य प्रदेश.*

ज्ञानवर्द्धक जानकारी

क्या है कुंभ, क्यों है कुंभ, कहां है कुंभ? शीर्षक से प्रकाशित लेख काफी ज्ञानवर्द्धक है और पाठकों को कुंभ के विषय में पर्याप्त जानकारी देता है. अब जबकि कुंभ का समय ज्यों-ज्यों नजदीक आता जा रहा है, ऐसे लेख ही श्रद्धालुओं का मार्गदर्शन करेंगे. कुंभ पर इतने बारीक विश्लेषण के लिए लेखक निश्चित तौर पर बधाई के पात्र हैं.

अनामिका सिंह, *नई दिल्ली.*

गांधी और पाकिस्तान

मेरी दिलचस्पी इस बात में नहीं है कि एम जे अकबर हक़ीक़त है, जिन्ना में जादू था आलेख में क्या कहना चाहते हैं, लेकिन मैं इस बहाने यह कहना चाहता हूं कि गांधी जिंदा कैसे रह जाते? उस समय के घटनाक्रमों की जांच इंग्लैंड और अमेरिका के धन्ना सेठों की गुप्त संस्थाओं के निरीक्षण में हो रही थी. अगर गांधी जिंदा रह जाते तो भारत समाजवादी हो जाता और पाक का अस्तित्व मिट गया होता. इसलिए उन संस्थाओं ने टेलीपैथी से गांधी को मरवा दिया. अगर अभी भी भारत में क्रांति हो जाए तो पाकिस्तान मुश्किल में पड़ जाएगा.

आशीष कुमार चौधरी, *दरभंगा, बिहार.*

देश के भविष्य से खिलवाड़

शिक्षा की बदहाली का ज़िम्मेदार कौन? शीर्षक से प्रकाशित रिपोर्ट पढ़ी. आश्चर्य होता है कि एक तरफ़ तो हम युवाओं को देश का भावी कर्णधार मानते हैं, वहीं दूसरी ओर उनके लिए शिक्षा तक की समुचित व्यवस्था नहीं कर सकते. सरकार घोषणाएं तो करती रहती है, लेकिन व्यवहारिक तौर पर कुछ भी नहीं होता.

रमेश कुमार, *मेरठ, उत्तर प्रदेश.*

सीमा पर ख़तरा

पाकिस्तान के लोकतंत्र को ख़तरे की बात निरंतर कही जाती रही है. यह तथ्य सही भी है. पता नहीं, पाकिस्तान कब चेतेगा? लेकिन यहां सवाल सिर्फ़ पाकिस्तान का ही नहीं, बल्कि भारत का भी है. आज पाकिस्तान के पास खोने के लिए ज़्यादा कुछ भी नहीं है. असल नुक़सान तो भारत का है, क्योंकि अगर तालिबानियों की आतंकी गतिविधियां यूं ही चलती रहीं तो सीमा पर भारत के लिए ख़तरा बढ़ जाएगा.

विजय अरोड़ा, *नई दिल्ली.*

पाठक अपने विचार और सुझाव हमें इस पते पर भेज सकते हैं-
संपादक, चौथी दुनिया, एफ-2, सेक्टर - 11
नोएडा (उत्तर प्रदेश) पिन-201301
ई-मेल पता : feedback@chauthiduniya.com

वर्ष 1984 में काराकोरम हाईवे को व्यापार और पर्यटन के लिए खोले जाने से उत्तरी इलाक़े जहां पाकिस्तान से जुड़े, वहीं दूसरी तरफ़ चीन के जिंगजियांग प्रोविंस के लिए भी एक रास्ता खुल गया.

पाकिस्तान का दिशाहीन लोकतंत्र और आज़ाद कश्मीर

पिछले कुछ सालों में पाकिस्तान के उत्तरी इलाक़े और आज़ाद जम्मू-कश्मीर में हुए आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन ने जम्मू-कश्मीर के इस हिस्से में शांति एवं ख़ुशहाली के कई रास्ते खोल दिए हैं. आने वाले दिनों में यह इलाक़ा पाकिस्तान और चीन की संयुक्त विकास योजनाओं का भी फ़ायदा देखेगा तथा इसका असर स्थानीय राजनीति पर भी पड़ना लाज़मी है.

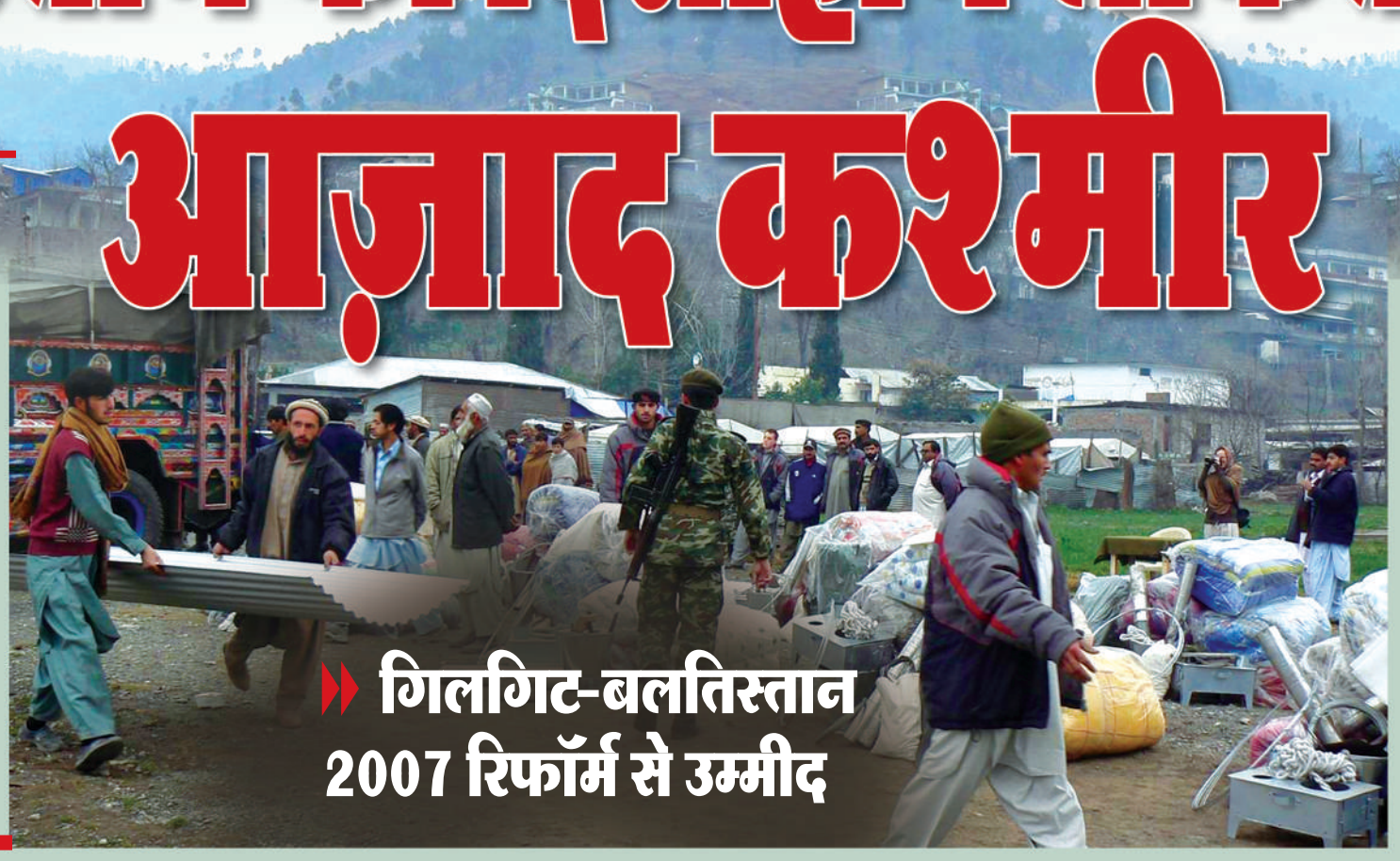

गिलगिट-बलतिस्तान 2007 रिफॉर्म से उम्मीद

अकदस वहीद

पाकिस्तान के संविधान के मुताबिक़, उत्तरी इलाक़ा न तो पाकिस्तान का हिस्सा है और न ही आज़ाद जम्मू-कश्मीर का अंग है. 1949 में आज़ाद जम्मू-कश्मीर की सरकार ने इन इलाक़ों की प्रशासनिक ज़िम्मेदारी पाकिस्तान को सुपुर्द कर दी थी, जो समय के साथ स्थायी हो चुकी है.

दुर्भाग्य से पाकिस्तान इन इलाक़ों को तरक़्क़ी के रास्ते पर लाने में विफल रही है, जिसमें मानवाधिकार और लोकतांत्रिक व्यवस्था स्थापित करना अहम रहा है. एक लंबे अर्से से इन इलाक़ों के लोग शांतिपूर्ण ढंग से अपने राजनीतिक और संवैधानिक अधिकारों की लड़ाई लड़ रहे हैं.

लगभग छह दशक पहले उत्तरी इलाक़ों को महाराजा रंजीत सिंह से आज़ादी मिली थी, जिनका वंश जम्मू-कश्मीर पर हुकूमत करता था. इसके बावजूद उत्तरी इलाक़ों का कश्मीर से ऐतिहासिक नाता होने के कारण पाकिस्तान में विलय नहीं किया गया. जबकि यहां के लोग यह चाहते रहे कि उनका पाकिस्तान में विलय कर लिया जाए. इसके साथ ही पाकिस्तान प्रशासन का एक वर्ग चाहता था कि सरकार गिलगिट इलाक़े से एक अलग समझौता स्थापित करे. यहां ग़ौर करने की बात यह है कि वास्तव में महाराजा रंजीत सिंह ने इन इलाक़ों को ब्रिटिश हुकूमत को लीज़ पर दिया था और उनके जाने के बाद स्वाभाविक तौर पर इन इलाक़ों पर पाकिस्तान का हक़ बनता है. इन इलाकों पर पाकिस्तान का अधिकार बन भी गया, लेकिन बाद में पाकिस्तान सरकार ने जम्मू-कश्मीर राज्य से जुड़े होने के नाते इन इलाक़ों का पाकिस्तान में विलय नहीं किया.

इसके बावजूद दो और कारण रहे, जिनसे इन इलाक़ों पर पाकिस्तान सरकार की प्रशासनिक पकड़ बनी. पहला, महाराजा रंजीत सिंह से आज़ादी मिलने के बाद गिलगिट-बलतिस्तान इलाक़े का आज़ाद जम्मू-कश्मीर से संपर्क टूट गया था और दूसरा, पाकिस्तान के साथ-साथ आज़ाद कश्मीर के राजनीतिक नेतृत्व को इसमें संदेह नहीं था कि रेफेरेंडम कराए जाने पर यहां के लोग पाकिस्तान के साथ विलय हो जाने का फ़ैसला करेंगे. लिहाजा उनके लिए यह बात मायने नहीं रखती थी कि गिलगिट-बलतिस्तान पाकिस्तान के अधीन है या फिर आज़ाद कश्मीर के. इसी दौर में सरहद पार कश्मीर और आज़ाद कश्मीर में राजनीतिक ढांचों की नींव रखी जाने लगी. दोनों कश्मीर पर उपजे विवाद के बावजूद सरहद पार भारत में कश्मीर के लिए एक व्यवस्थित राजनीतिक ढांचा बनाया गया और 1951 में पहला स्थानीय चुनाव कराया गया. वहीं आज़ाद कश्मीर में व्यवस्था के लिए नियम-क़ानून 1952 में बना दिए गए और पहला चुनाव 1961 में कराया गया. आज़ाद कश्मीर के अंतरिम संविधान की रूपरेखा 1970 में बनकर तैयार हो गई, वहीं संसदीय व्यवस्था 1974 में लागू की गई.

दूसरी तरफ़, उत्तरी इलाक़ों में राजनीतिक और प्रशासनिक कार्यों के लिए फ्रंटियर क्राइम रेग्युलेशन का इस्तेमाल होता था और इलाक़े के लोगों की रज़ामंदी से यहां किसी तरह का लोकतांत्रिक ढांचा नहीं बनने दिया गया, जिसके चलते इलाक़े के लोग उन अधिकारों से वंचित रह गए, जो पाकिस्तान के नागरिकों को मुहैया थे. उत्तरी इलाक़ों की इस दशा के लिए प्रमुख कारण इलाक़े का दूरस्थ होना है और साथ-साथ पाकिस्तान में लोकतंत्र की विफलता भी ज़िम्मेदार रही. मसलन, पाकिस्तान में अधिकांश समय तक सेना ने प्रशासनिक तंत्र को अपने क़ब्ज़े में रखते हुए राज किया है और लोकतांत्रिक शक्तियां ख़ुद पाकिस्तान में जड़ें नहीं जमा पाई हैं. इसका एक असर यह भी रहा कि उत्तरी इलाक़े में एक सभ्य समाज का विकास नहीं हो सका और न ही यहां किसी तरह के राजनीतिक नेतृत्व ने जड़ें जमाईं, जो लोगों की आवाज़ को बुलंद कर सके. लिहाजा उत्तरी इलाक़ा हमेशा से समाज को बांटने वाले गुटों की चपेट में रहा और पाकिस्तान के प्रमुख राजनीतिक दल भी इस इलाक़े के प्रति उदासीन रहे. इस इलाक़े का पाकिस्तान की संसद में भी कोई वज़ूद नहीं रहा और इन्हीं कारणों से पाकिस्तान का मीडिया जगत भी इस मामले में कुछ नहीं बोलता था.

काराकोरम हाईवे को 1984 में व्यापार और पर्यटन के लिए खोले जाने से उत्तरी इलाक़े जहां एक तरफ़ पाकिस्तान से जुड़ गए, वहीं दूसरी तरफ़ चीन के जिगजियांग प्रोविंस के लिए भी रास्ता खुल गया. चीन के साथ स्थापित हुए इस संबंध का असर उत्तरी इलाक़ों की राजनीति और विचारधारा पर भी पड़ा. लिहाजा व्यापारिक और सामाजिक उत्थान के साथ-साथ उत्तरी इलाक़ों में लोगों की जागरूकता में भी इज़ाफ़ा हुआ. इससे पहले गिलगिट और बलतिस्तान के लोग सर्दियों के दिन में पाकिस्तान से अलग-थलग पड़ जाते थे. वहां के उच्च तबके के लोग कराची जाने लगे, जिसके चलते काराकोरम हाईवे खोलने के लिए दबाव बढ़ा. उसके बाद बड़ी संख्या में गिलगिट का मध्यम वर्ग भी एक बेहतर ज़िंदगी की आस में कराची पहुंचने लगा. कराची का रुख़ करने वाले परिवारों का वहां अहम आकर्षण बच्चों की पढ़ाई-लिखाई और एक बेहतर चिकित्सा व्यवस्था थी. इसी दौरान आगा ख़ान फाउंडेशन ने भी गिलगिट-बलतिस्तान में कई स्कूल और कॉलेजों की नींव रखी और वहां के लोगों को व्यापार के लिए वित्तीय मदद दी. इसके साथ ही उत्तरी इलाक़े के कई लोगों को कराची में अपने स्कूलों और अस्पतालों में नौकरी पर भी लगाया.

क़ानूनी और राजनीतिक लड़ाई

पाकिस्तान की सुप्रीम कोर्ट ने अपने एक फ़ैसले में पाकिस्तान सरकार को निर्देश दिया कि उत्तरी इलाक़े के लोगों को वही अधिकार दिए जाने चाहिए, जो बाक़ी के जम्मू-कश्मीर राज्य को मिले हैं. कोर्ट ने पाकिस्तान सरकार को उत्तरी इलाक़ों में एक चुनी हुई प्रशासनिक व्यवस्था और सभी मूल अधिकारों सहित एक स्वतंत्र न्यायिक व्यवस्था बनाने के लिए छह महीने का वक़्त दिया. इस फ़ैसले के बाद पाकिस्तान सरकार ने कई सकारात्मक क़दम उठाए, लेकिन इस्लामाबाद के राजनीतिक हलकों में इस पर कई सवाल उठने लगे. सबसे अहम मामला यह रहा कि पाकिस्तान सरकार द्वारा सुप्रीम कोर्ट का फ़ैसला लागू करने के रास्ते में उत्तरी इलाक़ों के राजनीतिक और सेक्टेरियन विवाद सामने आने लगे. यही नहीं, जम्मू-कश्मीर राज्य से इस इलाक़े के ऐतिहासिक रिश्ते भी सरकार के फ़ैसलों के सामने आने लगे.

इन विवादों को दरकिनार नहीं किया जा सकता. पाकिस्तान में उत्तरी इलाक़े अपनी जातीय, सांप्रदायिक और भाषाई विभिन्नताओं के चलते एक अलग पहचान रखते हैं. हालांकि जनसंख्या का कोई वैज्ञानिक आंकड़ा मौजूद नहीं है, लेकिन इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि यह शिया मुस्लिम बहुल इलाक़े हैं और अगर चुनाव कराए जाते हैं तो उत्तरी इलाक़ों में शिया सरकार ही बनेगी. यही कारण है कि पाकिस्तान के शिया नेता उत्तरी इलाक़ों को पाकिस्तान का पांचवां प्रोविंस घोषित कराना चाहते हैं. वहीं दूसरी तरफ़ सुन्नी नेता उत्तरी इलाक़ों में शिया वर्चस्व को रोकने के लिए मांग करते हैं कि इन इलाक़ों को जम्मू-कश्मीर राज्य से अलग करके नहीं देखना चाहिए. इसके लिए वे उत्तरी इलाक़ों के जम्मू-कश्मीर राज्य के साथ ऐतिहासिक रिश्तों का हवाला देते हैं. लंबे अर्से तक पाकिस्तान का धार्मिक और राजनीतिक नेतृत्व अपनी मांगों के साथ बंटा रहा और इस बंटवारे में उत्तरी इलाक़े के क्षेत्रीय लोग शिकार होते रहे, लेकिन आज शिया और सुन्नी नेताओं को अपनी ग़लती का अहसास हो रहा है. इसके साथ ही उत्तरी इलाक़ों को पाकिस्तान का पांचवां राज्य घोषित करने की मांग को भी जायज़ नहीं मान सकते, क्योंकि पाकिस्तान सरकार का जम्मू-कश्मीर की जनता के साथ एक ख़ास रिश्ता है और उत्तरी इलाक़ों का पाकिस्तान में विलय करने से उस रिश्ते को नुक़सान हो सकता है. इस रिश्ते के अलावा पाकिस्तान सरकार कश्मीर मामले में अंतरराष्ट्रीय कमिटमेंट से भी बंधी हुई है. लिहाजा पाकिस्तान के पास एकमात्र विकल्प यही बचता है कि वह बीच का कोई रास्ता निकालते हुए उत्तरी इलाक़े के लोगों को मूल अधिकारों के साथ राजनीतिक अधिकार दे सके और ऐसा करने में कश्मीर के साथ उसके ऐतिहासिक रिश्ते पर कोई आंच भी न आए.

इस पृष्ठभूमि में धार्मिक, राजनीतिक और ग़ैर-सरकारी संस्थाओं ने रज़ामंदी से गिलगिट-बलतिस्तान नेशनल एलायंस की स्थापना की. इस एलायंस में पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी, जमात उलेमा-ए-इस्लाम, जमात-ए-इस्लामी और लिबरेशन फ्रंट भी शरीक हुआ. शिया-सुन्नी मतभेद को कम करने के लिए सुन्नी नेता इनायतुल्लाह शमाली को एलायंस का प्रेसिडेंट चुना गया और शिया नेता कुर्बान अली को जनरल सेक्रेटरी बनाया गया. पाकिस्तान की कश्मीर नीति की मजबूरी देखते हुए गिलगिट-बलतिस्तान नेशनल एलायंस ने आज़ाद कश्मीर जैसी एक सरकारी संस्था की मांग रखी, जिसके ज़रिए आंतरिक अटॉनमी के साथ-साथ पाकिस्तान की कश्मीर नीति को जारी रखा जा सके. एलायंस के इस फ़ॉर्मूले को समाज के कई वर्गों की सहमति हासिल है और इसके चलते पाकिस्तान सरकार पर भी ख़ासा दबाव है कि वह जल्द से जल्द इसे स्वीकृति दे. इसके ज़रिए पाकिस्तान सरकार के लिए अब गिलगिट-बलतिस्तान में क्षेत्रीय अटॉनमी देने का रास्ता साफ़ हो चुका है और ऐसा करने में अब उसे अपनी कश्मीर नीति में भी किसी तरह का कोई समझौता नहीं करना पड़ेगा.

...शेष अगले अंक में

इस लेख के अगले भाग में हम पाकिस्तान की सुप्रीम कोर्ट के निर्देश के बाद बने गिलगिट-बलतिस्तान रिफॉर्म 2007 की समीक्षा करेंगे.

(लेखिका पाकिस्तान से हैं और वहां चल रही लोकतांत्रिक प्रक्रिया की विश्लेषक हैं.)

feedback@chauthiduniya.com

ज़रा हट के

चाय पिएं, तंदुरुस्त रहें

हाल में आई एक रिपोर्ट के अनुसार, अगर हिसाब से चाय और कॉफी का सेवन किया जाए तो यह सेहत के लिए बहुत फ़ायदेमंद है. इतना ही नहीं, इससे हार्ट अटैक की आशंका कम हो जाती है. दिन भर में आठ कप चाय पीना आपकी सेहत के लिए अच्छा है. यह कहना है विशेषज्ञों का. अध्ययन में बताया गया है कि ब्रिटेन के उक्त पसंदीदा पेय मस्तिष्क की शक्ति को बढ़ाने, लंबी उम्र तक जीने और हृदय रोग में मदद करते हैं. लिहाजा ब्रिटेन में इसके सेवन पर लोग ज़ोर दे रहे हैं. रिपोर्ट के लेखक एवं न्यूट्रिशन विशेषज्ञ डॉ. कैरी रुक्सटन ने कहा कि उनका यह अध्ययन कुछ मिथकों का पर्दाफ़ाश करता है, जो कैफीन ड्रिंक्स जैसे चाय, कॉफी और कोक

में पाए जाते हैं. उन्होंने इस निष्कर्ष तक पहुंचने के लिए 47 स्वतंत्र परिणामों की तुलना की. डॉ. रुक्सटन ने अध्ययन में पाया कि जो कैफीन ड्रिंक्स में निहित होता है, उसे लेने से हार्ट अटैक और स्ट्रोक की आशंका कम रहती है. इसके साथ ही उक्त ड्रिंक्स लेने वाले लोग, न लेने वालों की तुलना में अधिक सतर्क और ख़ुश रहते हैं. उन्होंने कहा कि वयस्क एक दिन में अधिक से अधिक 400 मिलीग्राम कैफीन लेते हैं, जो आठ कप चाय और चार कप कॉफी के बराबर है. यह मात्रा पीने वाले के लिए सेहत के लिहाज़ से काफ़ी अच्छी है. उन्होंने कहा कि उक्त ड्रिंक्स बच्चों के लिए भी फ़ायदेमंद हैं, लेकिन सीमित मात्रा में. जैसे 95 मिलीग्राम, जो दो कप चाय और एक छोटा कप कॉफी के बराबर है.

डायनासोर की नई प्रजाति की खोज

वैज्ञानिकों की खोज करने की प्रक्रिया निरंतर जारी रहती है और इसी का परिणाम है कि रोज़ नई-नई चीज़ों की खोज होती रहती है. उन्होंने अब मध्य मोंटाना में रहे 11.2 करोड़ साल से भी अधिक पुराने डायनासोर की एक नई प्रजाति की खोज करने का दावा किया है. इस नई खोज से कई रहस्यों से पर्दा उठेगा. इसका रंग-रूप और आकार-प्रकार सुनकर आप चौंक जाएंगे, क्योंकि एंकीलोसॉर प्रजाति का यह डायनासोर सेना के टैंक की तरह दिखाई देता है. उसके सिर के चारों तरफ़ नुकीले कांटे जैसी आकृति थी, जो देखने से काफ़ी

भयावह लगती है. उसका जबड़ा सहित कंकाल काफ़ी मोटा है.

बफैलो म्यूज़ियम ऑफ साइंस के बिल और क्रिस पार्सन्स की अगुवाई वाले दल ने इसे नए सिरे से परिभाषित किया है. टाटंकासेफालस कूनीओरम के कंकाल का अधिकतर हिस्सा एक पहाड़ी के किनारे पाया गया, जिसके चलते यह ठीक ठाक अवस्था में मिला है. कंकाल के 90 फ़ीसदी सही सलामत होने की वजह से इस जीवाश्म को नई प्रजाति के तौर पर उचित ठहराना मुमकिन हो सका है. बिल पार्सन्स ने बताया कि अर्ली क्रेटासियस क्लोवरली जियोलॉजिक फॉर्मेशन के भीतर पाया जाने वाला एंकीलोसॉरिडे का यह पहला सदस्य है.

नोज़ते ने भारतीय अंतरिक्ष संगठन इसरो का भी दो बार दौरा किया था, जिससे उस पर चंद्रयान से संबंधित अहम जानकारियां इज़रायल तक पहुंचाने का भी शक़ किया जा रहा है.

ख़ुफ़िया एजेंसियों के सीक्रेट

जब अमेरिकी वैज्ञानिक बना मोसाद का एजेंट!

इज़रायल का ख़ुफ़िया आतंक

अमेरिकी वैज्ञानिक स्टीवर्ट डेविड नोज़ते

रक्षा विभाग में अपने कार्यकाल के दौरान नोजते.

तारीख़ 19 अक्टूबर 2009. अमेरिकी ख़ुफ़िया एजेंसी एफबीआई ने अपने ही देश के एक वैज्ञानिक को हिरासत में लिया. यह वैज्ञानिक एफबीआई की पकड़ में तो 19 अक्टूबर को आया, लेकिन उसकी शातिर नज़र इस वैज्ञानिक पर बहुत पहले से ही थी. कोई पुख्ता सबूत या शक़ की कोई ठोस वजह न होने के कारण एफबीआई तिलमिला रही थी. यह सभी जानते हैं कि यदि कोई आम या ग़ैर अमेरिकी होता तो एफबीआई का फंदा उसके गले तक बहुत पहले ही पहुंच चुका होता. यही वह वैज्ञानिक था, जिसकी अगुवाई में नासा के वैज्ञानिकों ने चांद पर पानी की खोज की. यह शख़्स न सिर्फ़ नासा का वैज्ञानिक था, बल्कि अमेरिकी रक्षा विभाग में भी अहम सदस्य रह चुका था. इसके रिश्ते अमेरिकी राजनीतिक दल रिपब्लिकन पार्टी से भी काफ़ी गहरे थे. इतना ही नहीं, अमेरिका के सबसे संवेदनशील न्यूक्लियर और सेटेलाइट मिशन से भी जुड़ा हुआ था यह अमेरिकी वैज्ञानिक. यानी इसके पास अमेरिका के लगभग हर गोपनीय मिशन की अहम जानकारियां मौजूद होती थीं. इसमें शक़ की कोई गुंजाइश भी नहीं होनी चाहिए, क्योंकि जो शख़्स अमेरिका के इतने अहम विभागों और मिशन का सदस्य रहा हो, उसके पास कोई अहम और ख़ास जानकारी न हो, ऐसा संभव ही नहीं है. अमेरिकी राजनीति में भी इसका दबदबा कुछ कम नहीं था. इसका अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज एच डब्ल्यू बुश से भी इस तेज़तर्रार वैज्ञानिक के काफ़ी क़रीबी ताल्लुकात थे. तभी तो उनके राष्ट्रपति के कार्यकाल के दौरान अमेरिका के संवेदनशील पदों पर इसकी नियुक्ति की गई. इसी दौरान इसने अमेरिका की कई ख़ुफ़िया जानकारियां जुटाईं. ये सभी अमेरिकी सुरक्षा और ख़ुफ़िया एजेंसियों की ऐसी बेहद गोपनीय जानकारियां थीं. यदि यह किसी दूसरे मुल्क के हाथ लग जाएं तो उसकी सुरक्षा में न सिर्फ़ सेंध लगने का ख़ौफ़ मंडराने लगता, बल्कि अमेरिका कई तरह के संकटों से घिर सकता था.

यह जगज़ाहिर है कि अमेरिकी अपने देश से बेइंतहा मोहब्बत करते हैं, इसीलिए वे अपने मुल्क को धोख़ा देने की बात सपने में भी नहीं सोच सकते. लेकिन आपको यह जानकर ताज्जुब होगा कि ऐसी बेहद संवेदनशील जानकारियां इस क़ाबिल वैज्ञानिक ने न सिर्फ़ लीक कीं, बल्कि दूसरे देशों को भी मुहैया कराईं. यही वजह है कि एफबीआई की टीम इस फिराक़ में लगी थी कि कब उसे मौक़ा मिले और वह इस हाईप्रोफाइल वैज्ञानिक पर अपना शिकंजा कस सके. यहां सवाल यह उठता है कि यदि कोई अमेरिकी अपने मुल्क को इतना चाहता है तो वह भला क्यों अपने देश की ख़ुफ़िया जानकारियां दूसरे देशों तक पहुंचाएगा? आख़िर इसके पीछे इस अमेरिकी वैज्ञानिक की मंशा क्या थी? क्या ऐसा करना उसकी कोई मजबूरी थी या वह एक गद्दार और देशद्रोही था? या फिर अमेरिकी सरज़मीं पर पला-बढ़ा यह वैज्ञानिक किसी के इशारों पर काम कर रहा था? यदि ऐसा था तो क्या यह मुमकिन है कि दुनिया के सबसे शक्तिशाली मुल्क की आंखों में धूल झोंकना उसके लिए इतना आसान था? दुनिया की सबसे ख़तरनाक और हमेशा चाकचौबंद रहने वाली सीआईए और एफबीआई जैसी ख़ुफ़िया एजेंसियों के रहते इस शातिर वैज्ञानिक के लिए अमेरिकी मांद में घुसकर उसे मात देना ख़तरों से ख़ाली नहीं था. पकड़े जाने का भय हमेशा उसके सिर पर तलवार की तरह लटक रहा था, लेकिन इस शातिर वैज्ञानिक के तेज़तर्रार दिमाग़ का ही नतीजा था. इसने न सिर्फ़ अमेरिकी एजेंसियों की आंखों में धूल झोंकी, बल्कि उनके लिए हमेशा एक पहेली बनी रही. पहेली इस बात की कि कौन अमेरिका की सबसे ख़ुफ़िया जानकारियों को एक ख़ास मुल्क तक पहुंचा रहा है और उसका मक़सद क्या था?

एफबीआई की सबसे बड़ी लाचारी और बेबसी यह थी कि वह उस शख़्स को तो जानती थी, पर उसके रसूख की वजह से ही उस पर किसी तरह की कार्रवाई करने से बाज आ रही थी. लेकिन, एफबीआई भी कहां हार मानने वाली थी. उसने भी एक ऐसी तरक़ीब निकाली, जिससे उसका निशाना बिल्कुल अचूक बैठा. दरअसल, एफबीआई ने एक स्टिंग ऑपरेशन के ज़रिए इस अमेरिकी वैज्ञानिक पर शिकंजा कसना शुरू किया. इस स्टिंग ऑपरेशन से यह बिल्कुल ज़ाहिर हो गया कि जो शख़्स अभी तक अमेरिकी सरज़मीं पर पला-बढ़ा, उसी ने इसे धोख़ा दिया है. वह रह तो रहा था अमेरिकी नागरिक के तौर पर, लेकिन अंजाम दे रहा था ग़ैर मुल्क के ख़ुफ़िया कारनामों को. उस स्टिंग ऑपरेशन ने इस वैज्ञानिक के सारे काले चिट्ठे की बखिया उधेड़ कर रख दी. अब यह बात भी सामने आ चुकी थी कि इस शख़्स ने अपनी दो शक्लें अख्तियार कर रखी थीं. यह एक तरफ़ वैज्ञानिक बनकर अमेरिका के लिए नई-नई खोजें कर रहा था तो दूसरी ओर ख़ुफ़िया एजेंट के तौर पर गोपनीय सूचनाओं को अपनी एजेंसी तक पहुंचा भी रहा था. यह अमेरिकी वैज्ञानिक जिस मुल्क तक सारी गोपनीय ख़बरों को पहुंचा रहा था, वह कोई और नहीं, बल्कि उसका सबसे बड़ा समर्थक और उसी के रहमोकरम पर टिका रहने वाला देश है. आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि वह देश अमेरिका का सबसे ख़ासमख़ास इज़रायल है और वह वैज्ञानिक कोई और नहीं, बल्कि इज़रायल की ख़ुफ़िया एजेंसी मोसाद का एजेंट है. लेकिन सोचने वाली बात है कि आख़िर यह काम इज़रायल क्यों कर रहा था? अमेरिका उसका सबसे क़रीबी मित्र है और उसके हर क़दम पर साथ देता रहा है. इस मामले में फ़िलहाल किसी के पास कुछ भी जानकारी नहीं है, लेकिन एक बात बिल्कुल साफ़ है कि यह शख़्स इज़रायल की ख़ुफ़िया एजेंसी मोसाद का एजेंट है. कम से कम एफबीआई तो ऐसा ही मानती है और ऐसा मानने के पीछे उसके पास कई ठोस वजहें भी हैं. अब हम आपको बता दें कि अमेरिका का यह वैज्ञानिक और मोसाद का एजेंट है स्टीवर्ट डेविड नोज़ते. जी हां, यही वह शख़्स है, जिसे अमेरिका की कई अहम और गोपनीय जानकारियां इज़रायल तक पहुंचाने और मोसाद के लिए जासूसी करने के आरोप में गत 19 अक्टूबर को गिरफ़्तार किया गया है. डेविड नोज़ते पर आरोप है, जो स्टिंग ऑपरेशन से ज़ाहिर भी होता है, कि वह इज़रायल के लिए अमेरिका में जासूसी कर रहा था और उसने कई बेहद संवेदनशील जानकारियां इज़रायल तक पहुंचाईं.

यह जगज़ाहिर है कि अमेरिकी अपने देश से बेइंतहा मोहब्बत करते हैं, इसीलिए वे अपने मुल्क को धोख़ा देने की बात सपने में भी नहीं सोच सकते. लेकिन आपको यह जानकर ताज्जुब होगा कि ऐसी बेहद संवेदनशील जानकारियां इस क़ाबिल वैज्ञानिक ने न सिर्फ़ लीक कीं, बल्कि दूसरे देशों को भी मुहैया कराईं.

इस मामले में ताज़ा ख़बर यह है कि डेविड नोज़ते ने एफबीआई को यह धमकी दी है कि यदि उसे ज़्यादा समय तक हिरासत में रखा गया तो अंजाम गंभीर हो सकते हैं. साथ ही नोज़ते ने दुनिया की सबसे शक्तिशाली एजेंसी एफबीआई को यह भी धमकी दी कि यदि उसे जेल में रखा गया तो वह और भी कई अहम एवं ख़ुफ़िया जानकारियां इज़रायल को दे देगा. यह काम वह जेल के भीतर से भी कर सकता है. यदि उसे छोड़ दिया गया और शांति से रहने दिया गया तो वह किसी को कुछ नहीं बताएगा. इससे अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि मोसाद के एजेंट कितने निर्भीक, निडर और कहना ग़लत न होगा कि एहसान फरामोश होते हैं. शायद ख़ुफ़िया एजेंसियों की यही फ़ितरत होती है, लेकिन मोसाद उन सबसे हमेशा दस क़दम आगे रहती है. यही उसके शातिर और तेज़तर्रार होने का सबूत भी है. वह इज़रायल के अलावा अपने सबसे बड़े सहयोगी अमेरिका का भी दोस्त नहीं है.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

spice
www.spice-mobile.com
अब सब खल्लास!
मल्टी-सिम M-4580 की आकर्षक कीमत और भरपूर खूबियाँ करे सबको खल्लास।
M-4580
किलर खूबी: बड़ी बैट्री
25 दिनों का स्टैंड-बाइ टाइम और 10 घंटों का टॉकटाइम
मल्टी-सिम (GSM/GSM)
MP3 प्लेयर और FM रिकार्ड
वन-टच टॉर्च और करैन्सी चैकर
4 GB तक एक्सपैन्डेबल मैमोरी
BEST BUY PRICE: Rs. 2149
M-5252
10 दिनों का स्टैंड-बाइ टाइम और 4 घंटों का टॉकटाइम
मल्टी-सिम (GSM/GSM)
डिजिटल कैमेरा
बिल्ट-इन FM एंटेना
ड्यूअल LED टॉर्च
8 GB तक एक्सपैन्डेबल मैमोरी
BEST BUY PRICE: Rs. 3049
C-5300
सभी CDMA कनेक्शन के साथ चले
बड़ी स्क्रीन
डिजिटल कैमेरा
MP3 प्लेयर और FM रिकार्ड
एक्सपैन्डेबल मैमोरी
वन-टच टॉर्च
BEST BUY PRICE: Rs. 2999
बड़ी स्क्रीन | बड़ी मैमोरी | बड़ा साउण्ड | बड़ी बैट्री
big series
Spice Mobiles come loaded with:
emergic email2sms Mail on Mobile | Shuffle Ring tone | mGurujee | ibibo i build · i bond | REUTERS | Mobile Tracker
Registered Office: Spice Mobiles Ltd., D-1, Sector-3, Noida 201301, Uttar Pradesh, India. Fax: +91-120-4363845. E-mail: contactus@spicemobile.in. Spice Mobile Phones are available at all leading telecom outlets. *Conditions apply. Price features and specifications are subject to change without prior notice. Some of the listed capacity is used for phone functions and thus available capacity could be less than the quoted figure. Battery operation time may vary depending on network usage, environment, music and video formats.
www.itsaugust.com

बीती आठ नवंबर को हरिद्वार में संत समुदाय के कुछ सदस्यों ने जो कुछ भी किया, वह सिर्फ चिंतनीय नहीं है, बल्कि घोर निंदनीय है. यह आचरण संतों का तो कतई नहीं हो सकता.

कुंभ दूर है, साधुओं का दंभ उभरने लगा है

डॉ.कमलकांत बुधकर

चर्चा कुंभनगर की

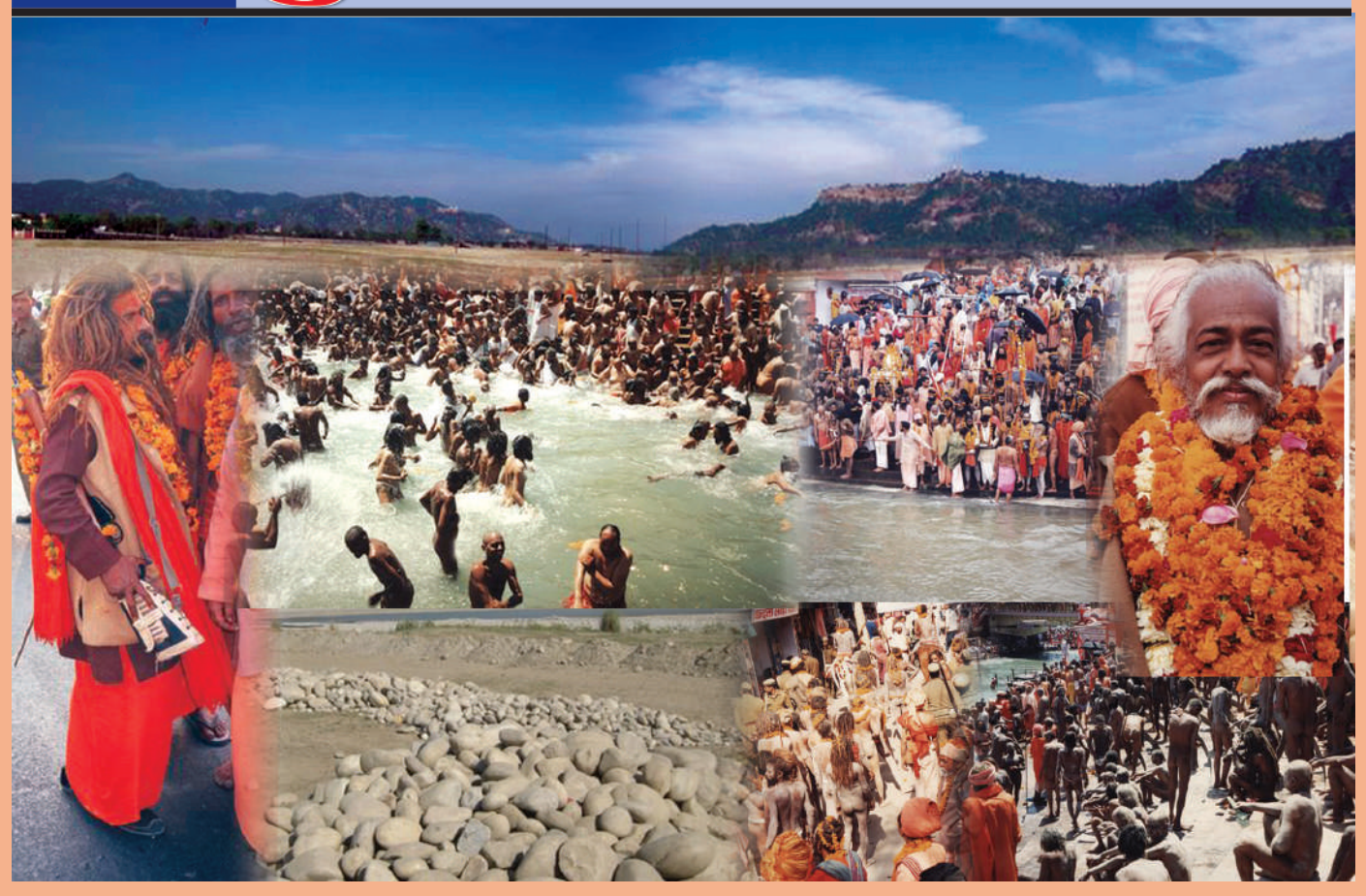

अधिकारियों और ठेकेदारों के चंगुल से महाकुंभ बच भी जाए, पर साधु–संतों के दंभ से वह बच नहीं पाता है! यही अब तक होता आया है और यही अब 2010 के हरिद्वार महाकुंभ में हो रहा है! इतिहास साक्षी है कि कुंभ जैसे महापर्व सामाजिक सौहार्द के ऐसे बड़े अवसर होते हैं, जबकि बारह बरस में एक बार एक स्थान पर एकत्र होकर योगी एवं भोगी सामाजिक चिंतन और भविष्य के लिए नई राहों का अन्वेषण करते हैं. साधु–संन्यासियों को समाज के चिंतक और मनीषी वर्ग में गिना जाता है. अपने लिए भगवद् उपासना व समाज के लिए कल्याण–चिंतन ही इस चतुर्थाश्रम का दायित्व और ध्येय रहा है, लेकिन यह औदात्यपूर्ण परंपरा है, जो अब कालांतर में रूढ़ियों तक सीमित होकर रह गई है.

महाकुंभ के अवसर प्राय: तपस्वियों, साधकों और अरण्यवासियों को आदर–सम्मान देने के अवसर हुआ करते थे. जब कुंभ के पुण्य स्नान के बहाने उक्त लोग अपना एकांत त्यागकर कुंभ स्थलों पर आते थे और वहां जुटने वाले आस्तिक समाज का मार्गदर्शन करते थे, तब समाज के समृद्ध वर्ग यानी राजे–रजवाड़े और सेठ–साहूकार आदि इन त्यागियों–तपस्वियों के चरणों में अपना सर्वस्व समर्पित करके धन्य होते थे. नंगे पैरों देशाटन करने वाले इन विरक्तों को हाथी–घोड़ों पर बैठाकर चांदी–सोने की पालकियों में गंगा स्नान के लिए ले जाया जाता था. यह सम्मान इन्हें इसलिए दिया जाता था, क्योंकि यह वर्ग अपने स्वार्थ के स्थान पर परार्थ को सब कुछ समझता था. समाज का चिंतन करता था, समाज के लिए जीता और उसी के लिए मरता था! लेकिन, आज स्थितियां बदल चुकी हैं. संन्यासी हो या बैरागी, उदासी हों या निर्मले, अरण्यवासी अब कोई नहीं है; सब नगरवासी हैं. सब सुख–ोपभोगी हैं. बड़े–बड़े भवनों और अट्टालिकाओं में विराजते हैं, कारों–विमानों में विचरते हैं, आधुनिकतम सुख–सुविधाओं के आदी हैं और इन सबके बावजूद सम्मानकामी हैं. आज देश के साधु–संतों में शायद बीस प्रतिशत ही ऐसे होंगे, जिन्हें वाणी और व्यवहार से सचमुच संत कहा जा सकता है. शेष का वाणी और व्यवहार दोनों ही सदा चर्चित रहता है, खासकर कुंभ जैसे महापर्वों पर. ऐसा ही कुछ इन दिनों कुंभनगर में घटित हो रहा है!

साधु समाज 13 प्रमुख अखाड़ों में संगठित है. चूंकि संगठन का नाम ही अखाड़ा है, इसलिए वहां मल्लयुद्ध की संभावना सदा बनी रहती है. कभी किसी काल में जब देश छोटी–छोटी रियासतों और जागीरों में बंटा हुआ था, तब शायद धर्म रक्षा के लिए इन योद्धा साधुओं की आवश्यकता पड़ती रही होगी. लेकिन अब स्व–ाधीनता प्राप्ति के बाद जब देश एक सार्वभौमिक गणराज्य है और उसकी अपनी एक तीन अंगों वाली सक्षम सेना है, हर प्रांत की अपनी पुलिस है, और तो और देश में तरह–तरह के अर्द्धसैनिक बल हैं, तब सीधे–सीधे साधुओं की सेना की कोई आवश्यकता नहीं लगती. मज़े की बात तो यह है कि यह साधु–सेना सकुशल कुंभ स्नान कर सके, इसके लिए भी सरकारी पुलिस व सैन्य बल ही लगाया जाता है.

लेकिन परंपरा के नाम अगर यह साधु सेना है और रखी जानी अब भी आवश्यक है तो इसके आचार–व्यवहार, कार्य–दायित्व और विचार–वाणी पर यही साधु समाज स्वयं चिंतन–मनन करे, यह बहुत ज़रूरी है. बहुत ज़रूरी है कि हमारा पूज्य संन्यासी वर्ग बैठकर चिंतन करे और इस बात पर सकारात्मक बहस करे कि इक्कीसवीं सदी से गुज़रते भारतवर्ष में संन्यासी वर्ग को 12 वर्ष में सिर्फ़ तीन शाही स्नानों के लिए निर्वस्त्र होकर निकलने की क्या आवश्यकता है? इससे कौन सा धर्मार्थ सिद्ध हो रहा है? इससे समाज का यह सामान्य मनीषी वर्ग रुचि पैदा कर रहा है या कुरुचि? वह भी तब, जबकि यही वर्ग शेष दिनों में समाज में सवस्त्र विचरण करता है. शेष समाज इन विषयों पर चिंतित होता रहता है, पर वर्ग विशेष की रूढ़िवादी ज़िद के आगे बेबस है.

हाल ही में हरिद्वार में साधु समाज के कारण कुछ ऐसी घटनाएं हो गईं, जिन्होंने इन पर एक बार फिर प्रश्नचिन्ह खड़े कर दिए हैं. समाज सोचने पर विवश है कि क्या आज का साधु व्यवस्था से भी ऊपर हो गया है? आठ नवंबर 2009 को कुंभनगर हरिद्वार में वार्षिक हरिद्वार महोत्सव का उद्घाटन होना था. उसी दिन महाकुंभ के निमित्त सरकार द्वारा क़रीब 250 करोड़ रुपयों की लागत वाली पच्चीस योजनाओं का लोकार्पण प्रदेश के मुख्यमंत्री डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक द्वारा किया जाना था. साथ ही आयोजित था आठ दिवसीय उत्तराखंड राज्य स्थापना समारोह का शुभारंभ. सारे समारोह सबके थे. अत: आम जनता आमंत्रित थी. कुंभ सिर पर है, इसलिए साधु–संतों और उनके अखाड़ों को भी न्यौता था.

कार्यक्रम शुरू होने में देर थी, तभी साधु समाज के लोग एक–एक करके आए, मंच पर चढ़े और वहां रखी कुर्सियों पर बैठते चले गए. वहां दो कुर्सियां मुख्यमंत्री और नगर विकास मंत्री के लिए भी लगाई गई थीं. पहली पंक्ति भर गई तो महत्वाकांक्षी साधु मुख्यमंत्री और मंत्री की कुर्सी भी हथिया बैठे. उसी बीच पतंजलि यो–गपीठ विश्वविद्यालय के कुलपति आचार्य बालकृष्ण आए और उन्हें कुछ साधुओं ने अगली पंक्ति में बुला लिया. बस, इसी बात से अखाड़ा परिषद के कतिपय कर्ताधर्ता बिगड़ गए. फिर मंच पर संतों की जो गाली–गलौज शुरू हुई, वह गली–मुहल्ले के शोहदों तक को शर्मसार कर देने वाली थी. बेचारे मुख्यमंत्री और मंत्री सहित राज्य के उच्चाधिकारियों को मंच छोड़कर सामने जनता के बीच बैठना पड़ा. जिन साधुओं ने अखाड़ा परिषद के उच्चाधिकारी की गाली–गलौज भरी भाषा का विरोध किया, उन्हें बाद में परिषद से निष्कासित कर दिया गया. उदासीन और निर्मल अखाड़े वालों को मंच पर जमकर खरी–खोटी सुनाई गई. भद्र संतों का यह अभद्राचरण मुख्यमंत्री सहित हरिद्वार की जनता तो देख ही रही थी, उसके साथ ही देख रही थी पंडाल में बैठी नई पौध! स्कूलों–कॉलेजों से बुलाए गए बच्चे–बच्चियों पर इस सबका क्या असर पड़ा होगा, ईश्वर ही जाने.

मंच पर मारपीट को उतारू इन साधु–संतों को मेला डीआईजी आलोक शर्मा, कुंभ मेलाधिकारी आनंद वर्धन सहित अनेक उच्च प्रशासनिक और पुलिस अधिकारियों ने बमुश्किल शांत किया, तब कहीं जाकर समारोह शुरू किया जा सका. साधु–संतों की इस सार्वजनिक रार का परिणाम अखाड़ा परिषद से छह बैरागी साधुओं के निष्कासन तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि दबंग साधुओं के अखाड़ों ने अपनी दबंगई के चलते दोनों उदासीन और एक निर्मल यानी तीन अखाड़ों को ही परिषद से निष्कासित कर दिया तथा प्रस्ताव पारित कर दिया कि उक्त निष्कासित अखाड़े न तो शाही स्नान कर पाएंगे, न ही प्रशासनिक बैठकों में भाग ले पाएंगे और न ही साधु–संन्यासियों के भोजन–भंडारों में शामिल हो पाएंगे! यानी इन सबका हुक्का–पानी बन्द! हालांकि निष्कासित साधुओं की ओर महंत हठयोगी ने बेहद सतर्क बात कही है कि चार संप्रदायों संन्यासियों, वैष्णवों, उदासियों और निर्मलों की अखाड़ा परिषद् में से जब उदासी और निर्मले निकाल दिए गए हैं तो आधे संप्रदायों की परिषद वैसे ही अपूर्ण है, उसके कोई मायने नहीं हैं.

इन्हीं परिस्थितियों के चलते कुंभ प्रशासन को अखाड़ा परिषद के साथ अपनी संयुक्त बैठक स्थगित करनी पड़ी. हरिद्वार महोत्सव में होने वाला संत सम्मेलन स्थगित हो गया और सर्वत्र यही एक चर्चा है कि क्या यही साधुता है? क्या इसी संतई का सम्मान करने के लिए अरबों रुपये ख़र्च करके कुंभ का मेला आयोजित किया जा रहा है? करोड़ों आस्तिक हिंदुओं के पूज्य संत चरणों का क्या यही आदर्श रूप है? डॉ. रमासिंह की पंक्तियां याद आ रही हैं, प्रश्न तो बिखरे यहां हर ओर हैं, किंतु मेरे पास कुछ उत्तर नहीं है! उक्त प्रश्न कुंभ की परंपरा और उसके प्रति आस्था के साथ भी जुड़े हैं. प्रश्न यह भी पैदा हो रहा है कि सारा समाज साधुओं के प्रति ही अपने दायित्वों का निर्वाह करता रहे या साधुओं को भी समाज के बारे में कुछ चिंतन–मनन की नए सिरे से ज़रूरत है? सार्वजनिक मंचों पर मां–बहन की गालियों से एक दूसरे को विभूषित करने वाले संतों से समाज अब और क्या अपेक्षा करे?

kk@budhkar.in

राशिफल

(23 नवंबर–29 नवंबर)

मेष (21 मार्च से 20 अप्रैल)
विवाद की स्थिति बन सकती है. अपनी वाणी पर संयम रखें. आपको कहीं दूर की यात्रा करनी पड़ सकती है. अगर प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी कर रहे हैं तो सफलता के प्रति आशान्वित रहें. संतान के संबंध में सुखद समाचार मिलने की उम्मीद है. स्वास्थ्य के प्रति सचेत रहें.

वृष (21 अप्रैल से 20 मई)
अधीनस्थ कर्मचारी या घरेलू नौकर के कारण तनावपूर्ण स्थिति की आशंका है. आर्थिक मामलों में सुधार होने की उम्मीद है. लंबे समय से चली आ रही समस्या का समाधान होगा. मौसमी रोगों से प्रभावित हो सकते हैं. आय के नए स्रोत बनेंगे.

मिथुन (21 मई से 20 जून)
वाहन चलाते समय सावधानी बरतें, नहीं तो दुर्घटना होने की आशंका है. अपनी वाणी में संयम नहीं रखेंगे तो विवाद में पड़ेंगे. शिक्षा प्रतियोगिता के क्षेत्र में आशातीत सफलता मिलेगी. रुके कार्य पूरे होंगे.

कर्क (21 जून से 20 जुलाई)
दुर्घटना के प्रति सचेत रहें. आपसी संबंध मधुर बनेंगे. पारिवारिक जीवन सुखमय होगा. रुपये के लेनदेन में सावधानी ज़रूर बरतें. कहीं दूर यात्रा पर जाएंगे तो सफलता अवश्य ही मिलेगी. शासन–सत्ता का सहयोग मिलेगा. अपने सामान के प्रति सचेत रहें.

सिंह (21 जुलाई से 20 अगस्त)
मकान, संपत्ति या वाहन के लिए ऋण लेने के प्रयास में आप सफल होंगे. व्यवसायिक व्यस्तता बढ़ेगी. यात्रा करते समय अपने सामान का ध्यान रखें. चीज़ों के खोने या उसके चोरी होने की आशंका है. विरोधी सक्रिय रहेंगे इसलिए विरोधियों के प्रति सावधान रहें.

कन्या (21 अगस्त से 20 सितंबर)
व्यवसायिक व्यस्तता बढ़ने की उम्मीद है. धनोपार्जन और सम्मान प्राप्ति की दिशा में चल रहे प्रयास फलीभूत होंगे. बहुप्रतीक्षित कार्यों के संपन्न होने से आत्मविश्वास में वृद्धि होगी. संतान आपकी चिंता का कारण हो सकते हैं. शाही ख़र्च या प्रदर्शन की भावना आर्थिक पीड़ा देगी.

तुला (21 सितंबर से 20 अक्टूबर)
अधिकारी का विरोध आपके लिए समस्याएं पैदा कर सकता है. किसी सहयोगी या अधीनस्थ कर्मचारी से सहयोग मिलने की उम्मीद है. मांगलिक कार्यों के लिए किए जा रहे प्रयास सफल होंगे. आर्थिक मामलों में सफलता मिलेगी.

वृश्चिक (21 अक्टूबर से 20 नवंबर)
सामाजिक एवं व्यवसायिक मामलों में सफलता प्राप्त होगी. जीवनसाथी का भरपूर सहयोग मिलेगा. आर्थिक योजना को बल मिलेगा. परिवर्तन की दिशा में की गई पहल सार्थक होगी. मूल्यवान वस्तु प्राप्त करने की आकांक्षा पूर्ण होगी.

धनु (21 नवंबर से 20 दिसंबर)
निजी संबंधों में मधुरता आएगी. पारिवारिक मामलों में किए जा रहे प्रयास सफल होंगे. व्यय पर नियंत्रण रखें. ख़र्च बढ़ने की आशंका है. किसी को अप्रिय बात न कहें, परेशानी होगी. वाणी की मधुरता बनाए रखें.

मकर (21 दिसंबर से 20 जनवरी)
विरोधी परास्त होंगे. किसी संबंधी या मित्र से धोख़ा मिल सकता है. किसी पर अधिक विश्वास करना कष्टकारी हो सकता है. संतान के दायित्व की पूर्ति होगी. कोई नया कार्य करने से पहले सोच–विचार कर ही निर्णय लें. पिता से सहयोग प्राप्त होगा.

कुंभ (21 जनवरी से 20 फरवरी)
अनुशासन में ढील न दें. दृढ़ता ही आपको सफलता दिलाएगी. कहीं दूर यात्रा के योग बन रहे हैं. समाज के कार्यों में अधिक व्यस्त रहेंगे. मनोरंजन के सुखद अवसर मिलने की उम्मीद है. पेट संबंधी शिक़ायतें हो सकती हैं. ज्यादा भोजन न करें. डॉक्टर से सलाह अवश्य लें.

मीन (21 फरवरी से 20 मार्च)
निकाले गए कर्मचारी को फिर से मौक़ा न दें, आपके लिए हितकर नहीं होगा. व्यस्तता रहेगी. आर्थिक मामलों में लाभ मिलेगा. आपके निर्णय सार्थक होंगे. व्यवसायिक मामलों में ढुलमुल रवैया कष्टकारी होगा. समाज में सम्मान प्राप्त होगा.

ज्योतिषाचार्य पं. सुदर्शन

कविता

बाघ

बाघ जैसी हमारी स्मृतियों में थे
अथवा सपनों में
अथवा चित्रों में सज्जित

हम रोज़ गुज़रते थे जंगलों से
गुज़रते थे जैसे अनाथ अनाम रास्तों से
व्यर्थ में उल्लसित

जंगलों में शिकारी थे फैले
यहां–वहां तन्मय
बाघों की टोह में
झुरमुटों के बीच
वृक्षों के सम्मुख

परंतु ऐसा कोई जंगल बचा कहां था
बाघ के आलोक से आलोकित
बाघ की गुर्राहट से कंपित

जिस तरह मनुष्य मारे जा रहे थे
रोज़ क्रूरता से प्रेरित हो–होकर
बाघ भी मारे जा रहे थे
बिना ढोल बजाए
बग़ैर किसी मुनादी के

एक दिन हम जिस तरह प्रेम को ढूंढ़ेंगे
वैसे ही ढूंढ़ेंगे अद्वितीय बाघ को बदहवास.

पृथ्वी

पृथ्वी धीरे–धीरे नष्ट हो रही है
जैसे नष्ट हो रहा है घर
जैसे नष्ट हो रही है तन्मयता
जैसे नष्ट हो रही है समझदारी

नष्ट हो रहा है साधारण का प्रकाश
नष्ट हो रहा है बीत चुका युग
नष्ट हो रहा है सारा समर्थ–असमर्थ

बढ़ रहा है सिर्फ़ झूठ
बढ़ रहा है सिर्फ़ छल
बढ़ रहा है सिर्फ़ प्रश्नचिह्न

पृथ्वी धीरे–धीरे नष्ट हो रही है
जैसे नष्ट हो रही है दोपहर
जैसे नष्ट हो रही है नाव
जैसे नष्ट हो रहा है पहाड़
जैसे नष्ट हो रहा है सच
जैसे नष्ट हो रहा है बचपन
इस पृथ्वी पर से.

रास्ते

जिस तरह हम प्रेम करते हैं
विराट अपने घर से
घर के पिछवाड़े उग आए
केले पपीते के गाछ से

प्रेम करते हैं रास्तों से
उसी तरह अगाध
मंत्रमयी मुस्कान लिए

जिस तरह हम बचाकर रखते हैं
जंगल घाटी नदी नए क्षितिज
वैसे ही बचाकर रखते हैं
रास्तों की भूमि पर.

शहंशाह आलम

सूरज को दीपक की दरकार नहीं होती. प्रभाष जी के विषय में जितना भी कहा और बताया जाए, कम है. यहां पर हमने संकलित किए हैं उनके सहयोगी एवं संपर्क में रहे कुछ चुनिंदा लेखकों के संस्मरण.

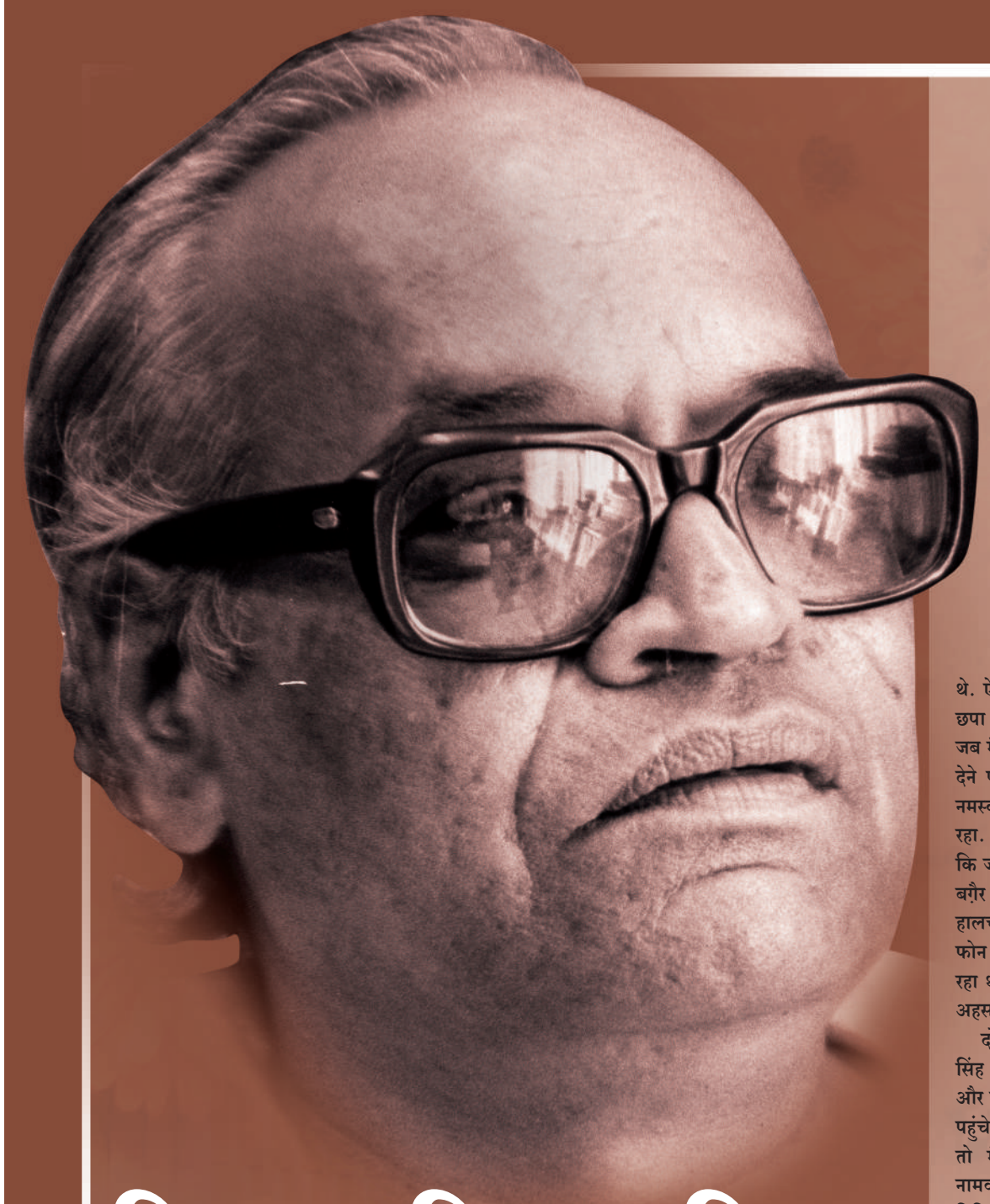

प्रभाष जोशी यानी स्कूल ऑफ जर्नलिज़्म

अनंत विजय

सात साल पहले की बात है, जब नामवर सिंह पचहत्तर वर्ष के हुए थे और प्रभाष जोशी की पहल पर देश भर में उनका जन्मदिन नामवर के निमित्त मनाया गया था. ठीक से याद नहीं है, लेकिन 2002 में ही हंस और एक-दो जगह मैंने इसे लेकर कई आलोचनात्मक लेख लिखे थे. ऐसा ही एक लेख हंस में कारण कवण नाथ मोहे मारा शीर्षक से भी छपा था. बात आई-गई हो गई थी. अचानक एक दिन फोन की घंटी बजी. जब मैंने उठाया तो आवाज़ आई, क्या अनंत से बात हो सकती है. मेरे जवाब देने पर फिर आवाज़ आई, प्रभाष जोशी बोल रहा हूं. मैंने आदरपूर्वक नमस्कार किया तो उन्होंने कहा कि बेटा हमीं पर शुरू हो गए. मैं डर से चुप रहा. चंद पलों के सन्नाटे के बाद प्रभाष जी ने ठहाका लगाया और कहा कि जमकर लिखते रहो और डरो मत. अगर तुम्हारी कलम में ताक़त है और बग़ैर किसी पूर्वाग्रह के लिख रहे हो तो बेख़ौफ़ अपनी बात रखो. फिर उन्होंने हालचाल पूछा, परिवार में कौन-कौन लोग हैं, यह दरियाफ़्त करने के बाद फोन रखते हुए कहा कि जब वक़्त मिले मिलना. मैं यह सोचकर ख़ुश हो रहा था कि मेरे लेख का प्रभाष जी ने नोटिस लिया और मुझे इस बात का अहसास भी कराया. बात आई-गई हो गई.

दो वर्ष बाद उनसे मेरी दूसरी मुलाक़ात पूर्व प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह के घर पर हुई. वहां पर कुछ साहित्यकारों एवं पत्रकारों की मुलाक़ात और गपशप का एक कार्यक्रम रखा गया था. प्रभाष जी समेत कई लोग वहां पहुंचे थे. धोती-कुर्ता पहने प्रभाष जी जब लोगों से मिलजुल कर खड़े हुए तो मैं भी हिम्मत कर उनके पास पहुंचा और अपना परिचय दिया. उन्होंने नामवर सिंह से कहा कि देखो यही हैं अनंत विजय, जिन्होंने नामवर के निमित्त पर हंस में लेख लिखा था. नामवर जी ने मुस्कुराते हुए कहा कि मैं जानता हूं कि आजकल यह साहित्य के मैदान में तलवारबाजी कर रहे हैं. मैं इस बात से ख़ुश हो रहा था कि दो साल बाद भी प्रभाष जी को मेरा लिखा याद है और नामवर सिंह जैसे दिग्गज मुझे मेरे लेख से पहचानते हैं. प्रभाष जी ने मेरा हौसला बढ़ाया और कहा कि लिखते रहो, लेकिन सिर्फ़ यह बात ध्यान में रखना कि कोई तुम्हारा इस्तेमाल कर अपना हित न साध ले. इस बीच मुझे उनकी किताब हिंदू होने का धर्म मिल चुकी थी और मैंने उसके संदर्भ में कई बातें प्रभाष जी से पूछी और जानी. उन्होंने मुझे इंडियन साधूज पढ़ने की सलाह दी. कई बार उनसे स्टूडियो में मुलाक़ात हुई, लेकिन गंभीर बातचीत का अवसर नहीं मिला, जो अब कभी मिल भी नहीं पाएगा. कुछ दिनों पहले प्रभाष जी ने एक वेबसाइट को दिए इंटरव्यू में कहा था कि वह अपनी आत्मकथा लिखना चाहते हैं. प्रभाष जी ने उसका शीर्षक दे भी दिया था, ओटत रहे कपास. लेकिन मालूम नहीं कि वह कितना कपास ओट पाए. अगर उन्होंने लिख दिया होगा तो यह किताब बेहद दिलचस्प होगी, भाषा और कंटेंट दोनों के लिहाज़ से, क्योंकि प्रभाष जी भाषा के साथ खेलते थे. जब उन्होंने जनसत्ता का संपादन संभाला तो अख़बारों की भाषा बेहद शास्त्रीय हुआ करती थी और संपादकों में यह हिम्मत नहीं थी कि वह भाषा को जनोन्मुख बना सकें. प्रभाष जी ने यह साहस दिखाया और अख़बारों की भाषा के व्याकरण को आमूलचूल बदल दिया. बाद में इस तरह की भाषा का अनुसरण अख़बारों और टीवी चैनलों ने अपनाया. न्यूज़ चैनल में काम करने वाले हमारे मित्र यह जानते हैं कि बार-बार उनसे कहा जाता है कि आम आदमी की भाषा लिखो. प्रभाष जी ने अप्रैल 1992 से जनसत्ता में अपना साप्ताहिक कॉलम शुरू किया कागद कारे. कुछ हफ़्तों को छोड़कर यह कॉलम चलता रहा और इस कॉलम को पढ़ने वाले यह जानते हैं कि प्रभाष जी ने हिंदी में लोकभाषा को किस तरह मिलाकर भाषा का एक नया मुहावरा गढ़ा और उसे पाठकों के बीच स्वीकार्य ही नहीं बनाया, बल्कि लोकप्रिय बनाकर स्थापित भी किया. उनकी इसी भाषा के चलते रामनाथ गोयनका ने उन्हें अपने साथ जोड़ा और पहले प्रजानीति, फिर इंडियन प्रेस, इसके बाद जनसत्ता का संपादक बनाया.

प्रभाष जी ने पत्रकारिता की शुरुआत नई दुनिया अख़बार से की, लेकिन फिर वह दिल्ली आ गए. उन्होंने अपनी भाषा और पत्रकारिता के नए तौर-तरीक़ों के बलबूते न केवल ख़ुद को स्थापित किया, बल्कि पत्रकारों की एक पूरी पीढ़ी ही खड़ी कर दी, जिसे लोग प्रभाष जोशी स्कूल ऑफ जर्नलिज़्म कहने लगे. प्रभाष जोशी पत्रकार के साथ-साथ एक्टिविस्ट भी थे. जब इंदिरा गांधी ने देश में इमरजेंसी लगाई तो प्रभाष जी लोकनायक जयप्रकाश नारायण के संपूर्ण क्रांति आंदोलन के साथ हो लिए और बेहद सक्रियता के साथ उन्होंने इमरजेंसी का विरोध किया. उस दौर में लोग यह कहते थे कि दो ही संपादक इंदिरा गांधी के निशाने पर हैं, मुलगांवकर और प्रभाष जोशी. बाद में यह साबित भी हुआ और प्रभाष जोशी को जयप्रकाश के समर्थन की क़ीमत भी चुकानी पड़ी. लेकिन संघर्ष के उन दिनों में प्रभाष जोशी ने जमकर अध्ययन किया, जिसका असर बाद के दिनों में उनके लेखन पर दिखाई दिया. प्रभाष जोशी के लेखन की रेंज बहुत व्यापक थी. वह समान अधिकार से राजनीति, फ़िल्म, खेल और साहित्य पर लिख सकते थे. प्रभाष जी ने फ़िल्म पर एक पत्रिका का संपादन भी किया था. वह लंदन के अख़बार में भी काम कर चुके थे. हिंदी साहित्य का भी गहन अध्ययन किया था. आज जब प्रभाष जी नहीं रहे तो लगता है कि हिंदी की एक ऐसी आवाज़ ख़ामोश हो गई, जो लगातार सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के नक़ली और आक्रामक तत्वों के बरक्स हिंदू होने के असली धर्म एवं मर्म को उभार रहा था. प्रभाष जी को चौथी दुनिया परिवार की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि.

(लेखक आईबीएन 7 से जुड़े हैं)

feedback@chauthiduniya.com

किसका कितना हिस्सा ले गए प्रभाष जी

रामचंद्र राही

इंडिया टुडे का हिंदी संस्करण 1986 में शुरू हुआ था. शुरू में इसमें महज़ पांच लोग थे और उनमें से चार जनसत्ता से लिए गए थे. मैं भी उनमें एक था. हमें बताया गया था कि अरुण पुरी को जनसत्ता की हिंदी सबसे ज़्यादा पसंद है, इसलिए वे यहां काम करने वालों को तरजीह देते हैं. जिस दिन हमें छोड़ कर जाना था, उस दिन एक्सप्रेस बिल्डिंग में हमारे लिए विदाई कार्यक्रम रखा गया. उसमें कई लोग बोले. अंत में प्रभाष जी का भाषण हुआ. भाषण के बीच उन्होंने कहा, कुछ लोग हवा में उड़ने की इच्छा रखते हैं. वे आसमान में खूंटा गाड़ना चाहते हैं. लेकिन उन्हें समझना चाहिए कि खूंटा तो ज़मीन पर ही गाड़ा जा सकता है, आसमान में किसी का खूंटा नहीं गड़ सकता. यह सुनकर हम लोगों को बुरा लगा था और हमारे मुंह लटक गए थे. लेकिन आज, पत्रकारिता के 23 साल देख लेने के बाद, मैं इस सीख के लिए उनका कृतज्ञ हूं.

अरुण पुरी को जो हिंदी पसंद बताई गई थी, वह प्रभाष जी की ही देन थी. जनसत्ता शुरू होने से सात-आठ महीने पहले लोग भरती कर लिए गए थे. इन महीनों में लगभग रोजाना प्रभाष जी हम लोगों से ख़बरें लिखवाया करते थे. सबके लिखे काग़ज़ इकट्ठे करके वह शाम को अपने साथ ले जाते थे. घर पर वह उन्हें जांचते थे और अगले दिन क्लास में हमारी लिखी ख़बरों की भाषा और वाक्य विन्यास पर सार्वजनिक रूप से डांटते, मज़ाक उड़ाते या तारीफ़ करते थे. उनका ऐसा आतंक था कि उनकी छोटी सी विपरीत टिप्पणी भी हम में से किसी को भी शर्मिंदा करने के लिए काफ़ी थी. मसलन उनका यह कहना कि मैं कुछ लोगों के ज्ञान से अभिभूत हूं लोगों को पानी-पानी कर देता था. लेकिन यह उनके सम्मान का आतंक था, उनकी अफ़सरी का नहीं.

पहली बार वहीं मैंने सीखा कि किसी हादसे की ख़बर के शीर्षक में दो दर्ज़न घायल लिखने की बजाय घायलों की सही संख्या देनी चाहिए. यह मानवीय गरिमा के लिए ज़रूरी है, क्योंकि आदमी कोई अमरूद-केला नहीं है. उस समय के हिंदी के सभी, कम से कम दिल्ली से निकलने वाले अख़बारों की भाषा ख़ासी शास्त्रीय थी. लेकिन हमें बताया गया कि भाषा कतई आम बोलचाल वाली होनी चाहिए, जिसमें सटीक अर्थ देने के लिए क्षेत्रीय शब्दों का भी इस्तेमाल हो सकता है. यह भी कि वाक्य छोटे होने चाहिए. पढ़ने वाले को किसी शब्द पर समझने के लिए रुकना न पड़े. तब सचिन तेंदुलकर की बजाय सुनील गावस्कर का जमाना था और प्रभाष जी तेंदुलकर की ही तरह गावस्कर के दीवाने थे. वह कहा करते थे कि भाषा ऐसी हो कि गावस्कर के कवर ड्राइव की तरह स्टॉक से बाउंड्री के पार हो जाए. कोई उसे रोक नहीं पाए.

ये 1983 की बातें हैं. उस समय तक पढ़ने-लिखने वालों में ज़्यादातर लोगों के लिए दिनमान और रविवार मानदंड रहे थे. इनसे हमने रिपोर्टिंग का अंदाज़ लिया और लुप्थांसा एअरलाइंस के लिए लुप्तहंस जैसे शब्द भी. लेकिन प्रभाष जी ने अपने नए शब्द गढ़े. पहले उन्होंने दोतरफ़ा बातचीत दी, जो एक दिन तितरफ़ा हो गई. वह पंजाब से खाड़कू और मरजीवड़े लाए तो दिल्ली में उन्होंने जमनापार धुआंधार चला दिया. दो फाड़ को तो उन्होंने हमेशा के लिए स्थापित कर दिया. क्रिकेट की रिपोर्ट कैसी होनी चाहिए, यह वह आख़िरी वक़्त तक सिखाते रहे.

जनसत्ता 1959 में भी निकला था, जिसके संपादक कोई शास्त्री जी थे. मगर तीन ही साल में रामनाथ गोयनका ने वह अख़बार बंद कर दिया था. इमरजेंसी में एक्सप्रेस समूह ने एक साप्ताहिक निकाला, जो इमरजेंसी के साथ ही समाप्त हो गया. फिर मुंबई में शरद जोशी के संपादन में हिंदी एक्सप्रेस निकला. वह भी नहीं चला. हम सब डरे हुए थे कि पता नहीं, यह अख़बार चलेगा या नहीं. लेकिन प्रभाष जी के दिमाग़ में वह अख़बार पहले से था और जब वह बाहर आया तो उसने उस समय तक के तमाम रिकार्ड तोड़ दिए. वहां काम करने वाले लोग उसके जलाल में भागीदार बने. मगर यहां मैं एक बात और कहना चाहता हूं. जनसत्ता में काम करने वालों के अलावा उसके बाहर भी अनेक पत्रकार थे, जो प्रभाष जी के लेखन और इस अख़बार से बाहर ही बाहर बहुत कुछ सीख रहे थे. मेरा मतलब है कि अगर प्रभाष जी द्रोण थे तो जनसत्ता में काम करने वाले सारे लोग अर्जुन नहीं हो गए थे, जबकि उसके बाहर बहुत से एकलव्य ज़रूर पैदा हो गए.

पिछले कई साल से प्रभाष जी संपादक नहीं थे. इसलिए यह कहना ग़लत होगा कि अब विभिन्न मसलों पर हम किसके लिखने का इंतज़ार करेंगे कि देखें वे क्या लिखते हैं. पत्रकारिता में वह थे भी तो इस तरह, मानो घर में कोई बुज़ुर्ग है. ज़रूरत पड़ने पर बात कर ली, अन्यथा उपेक्षित. उसकी कमी का एहसास तो तब होता है, जब वह बुज़ुर्ग चला जाता है. राहुल देव के 1996 में जनसत्ता छोड़ कर आजतक जाते समय प्रभाष जी ने कहा था कि आपका कोई पुराना साथी जब छोड़ कर जाता है तो वह आपका एक हिस्सा तोड़ कर ले जाता है. आज, क्या ऐसा कोई आकलन किया जा सकता है कि स्वयं प्रभाष जी किस-किसका कितना हिस्सा तोड़ कर ले गए हैं?

(लेखक गांधीवादी विचारक हैं)

feedback@chauthiduniya.com

प्रभाष जी गांधीवादी विचारधारा की उपज थे

प्रभाष जी की सोच की बुनियाद ही गांधी दर्शन और मूल्यों पर टिकी है. विनोबा जी के आंदोलन से भी वह सक्रिय तौर पर जुड़े रहे. वह सर्वोदय के प्रति पूरी तरह समर्पित रहे. लोगों को जागरूक और संगठित करने का काम तो वह निरंतर करते रहे. उन्हें क़रीब से जानने वाले लोगों को पता होगा कि उनकी जीवन यात्रा की शुरुआत ही सर्वोदय से हुई थी. आचार्य विनोबा भावे इंदौर आए हुए थे और वहां एक माह से अधिक समय तक वह रुके थे. वहां उन्होंने अशोभनीय पोस्टर के ख़िलाफ़ एक अभियान चलाया था. विनोबा जी मानते थे कि अश्लीलता लोगों के मन पर हमला है. युवा प्रभाष जी इसमें काफी सक्रिय रहे. इस तरह से वह युवावस्था से ही गांधीवादी और सर्वोदयी विचारधारा से जुड़े रहे.

पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रभाष जी ने गांधीवादी विचारधारा के प्रवाह को आगे बढ़ाने का काम किया. प्रभाष जी की सोच की बुनियाद ही गांधीवादी दर्शन और मूल्यों पर टिकी है. विनोबा जी के आंदोलन में तो वह सक्रिय थे ही, हम सब उस आंदोलन में साथ थे. लेकिन, पत्रकारिता के क्षेत्र में उन्होंने विशेष योगदान दिया. वह गांधीवादी विचारधारा से जुड़े विभिन्न संगठनों और आयोजनों से सक्रिय रूप से जुड़े रहे. पूरे देश के गांधीवादी विचारकों का सर्वोदय समाज सम्मेलन होता है. जेपी की जन्म शताब्दी पर पटना में जो सम्मेलन हुआ था, उसकी अध्यक्षता उन्होंने की थी, मेरे निवेदन पर. गांधी स्मारक निधि के वह ट्रस्टी भी थे. गांधी शांति प्रतिष्ठान की गतिविधियों से तो वह शुरू से जुड़े रहे. प्रतिष्ठान के विभिन्न कामों में वह सक्रिय रहे. सर्व सेवा संघ सर्वोदय आंदोलन का एक शीर्ष संगठन है. इस संगठन के मुखपत्र सर्वोदय जगत के वह संपादक रहे. भवानी बाबू थे, मैं भी संपादक रह चुका हूं इसके कई वर्षों तक हम लोग एक तरह से परस्पर सहकर्मी भी थे. गांधीवादी विचारों से जुड़ा होने के कारण परस्पर एक भावनात्मक लगाव भी होता है, इसलिए हम सभी पारिवारिक भी रहे. उम्र में वह मुझसे दो साल बड़े थे. उनके जाने से मुझे तो यही लग रहा है कि मैं अपने बड़े भाई से बिछुड़ गया. जिस दिन उनका निधन हुआ, उस दिन बारह घंटे पहले क़रीब ग्यारह बजे मेरी उनसे फोन पर काफ़ी देर तक बातचीत हुई थी. 17 नवंबर को सर्व सेवा संघ की ओर से हिंद स्वराज पर एक गोष्ठी आयोजित होनी है. इस गोष्ठी में उन्होंने शामिल होने का आश्वासन दिया था. इसमें एक पुस्तक का विमोचन भी किया जाना है. उन्होंने इसके लिए अपनी सहमति जताई थी. पीस फाउंडेशन के साथ मिलकर हम सभी एक पुस्तक उनके संपादन में निकालना चाहते थे, उनसे इस बारे में भी चर्चा हुई थी. पत्रकारिता के क्षेत्र में जो भूमिका निभानी थी, उसे तो वह निभा ही रहे थे, लेकिन गांधीवादी विचारधारा से जुड़ा होने के कारण जितना कुछ किया जा सकता था, इसमें भी वह रचनात्मक योगदान दे रहे थे. प्रभाष जी संपूर्ण क्रांति आंदोलन की गतिविधियों में भी सक्रिय रहे. गोयनका जी के सहयोग से संपूर्ण क्रांति आंदोलन के समर्थन में दिल्ली से दो पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही थीं, अंग्रेजी में एवरी मेंस और हिंदी में प्रजा नीति. वह इससे भी जुड़े रहे. प्रभाष जी का जाना गांधीवादी विचारधारा की व्यक्तिगत क्षति भी है. वह व्यक्ति इतना निष्ठावान था कि उसने कभी भी धन, धर्म या सत्ता की राजनीति को स्वयं पर हावी नहीं होने दिया. पत्रकारिता के क्षेत्र में मूल्यों की लड़ाई में वह अकेले योद्धा थे. वह सैनिक थे और सेनानायक भी. उन्होंने जो कुछ शुरू किया, उसका प्रवाह रुकने न पाए, यह आगे आने वाली पीढ़ी को देखना है. कई बार हमारे बीच चर्चा हुई. जीवन के आख़िरी दिनों में वह काफ़ी व्यथित रहे. पिछले चुनावों के दौरान जिस तरह से अख़बारों ने पैसे लेकर विज्ञापन को समाचार के रूप में परोसने का काम किया, इससे वह काफ़ी बेचैन थे. उन्होंने यात्राएं कीं, भाषण दिए और घूम-घूम कर अख़बारों के इस रवैये के ख़िलाफ़ लोगों को एकजुट करने की कोशिश की. इसके ख़िलाफ उन्होंने एक तरह से मुहिम ही छेड़ दी थी. वह चाहते थे कि कहीं तो लोगों की चेतना में यह बात आए कि हम जो करते हैं उसके कुछ उसूल होते हैं, कुछ धर्म होता है और हर चीज बाज़ार में बेच देने के लिए ही नहीं होती है.

जहां तक उनके व्यक्तित्व की बात है, तो वह बहुत ही आत्मीय व्यक्ति थे. किसी के भी साथ उनका रिश्ता प्रेम का ही होता था. विचारों में अंतर हो सकता है. ऐसे लोगों को मैं जानता हूं जिनके साथ उनके विचार कतई नहीं मिलते, लेकिन उनसे भी प्रभाष जी का प्रेम का रिश्ता ही था, मानवीय रिश्ता था. प्रभाष जी रिश्ते को क़ायम रखना जानते थे. निधन के बाद उनका पार्थिव शरीर गांधी शांति प्रतिष्ठान में दर्शनार्थ रखा हुआ था. वहां लालकृष्ण आडवाणी भी आए थे, उनके पार्थिव शरीर पर श्रद्धासुमन अर्पित करने. मुझे अचानक ध्यान आया कि प्रभाष जी ने कितना कुछ लिखा था उनके ख़िलाफ़. लेकिन अहिंसक वृत्ति का जो व्यक्ति होता है, उसके वैचारिक विश्लेषण में तीक्ष्णता और तीव्रता चाहे जितनी हो, पर उसमें क्षुद्र प्रतिहिंसा नहीं होती है. प्रतिहिंसा, पुनर्प्रतिहिंसा को जन्म देती है, लेकिन एक बेबाक टिप्पणी, विश्लेषण या विचारों को दृढ़तापूर्वक रखने में दुश्मनी का भाव नहीं रहता. आडवाणी जी आए, वहां रुके कुछ देर तक और उन्होंने श्रद्धासुमन अर्पित किया. अहिंसक वृत्ति का यह एक अच्छा उदाहरण है कि जिसका विरोध उन्होंने ख़ूब किया, वह भी सोचता है कि एक निष्ठावान और ईमानदार व्यक्ति अब उनके बीच नहीं है.

पत्रकार के तौर पर प्रभाष जी ने पूरे विश्लेषण में व्यक्तियों के कृतित्व, उनकी सोच और उनके नेतृत्व में चल रहे कार्यक्रमों का विश्लेषण किया, जैसे कोई शव परीक्षण. लेकिन, उस व्यक्ति विशेष के प्रति कभी भी उन्होंने घृणा का भाव नहीं रखा. चंद्रशेखर एवं विश्वनाथ प्रताप सिंह और उनके जैसे ही भारतीय राजनीति में नई धारा पैदा करने वाले जो भी व्यक्ति रहे, के प्रति सहमति और असहमति के सभी बिंदु उन्होंने रखे. उनके साथ मैत्री का भाव रखते हुए भी उन्होंने आलोचक की भूमिका निभाई. ऐसा इसलिए, क्योंकि किसी के प्रति उनके मन में घृणा का भाव नहीं था. हृदय में अगर हिंसा का उदय होता है तो वह घृणा, नफ़रत या बदले के भाव से होता है. लेकिन वैचारिक बुनियाद पर, मूल्यों के आधार पर जब कोई विश्लेषण करता है तो उसमें एक प्रकार की तटस्थता रहती है. प्रभाष जी में तटस्थता का यह भाव मृत्युपर्यंत नज़र आया.

सुशील कुमार सिंह
feedback@chauthiduniya.com

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं)

म्यूजिक और वीडियोग्राफी की हॉबी रखने वालों के लिए एक अच्छी ख़बर है. नैनो आईपॉड के ऑटोमेटिक जीनियस मिक्सर की मदद से आप डीजे म्यूजिक की लाइब्रेरी बना सकते हैं.

अब लैपटॉप गर्म नहीं होगा !

लैपटॉप और पीसी का गर्म हो जाना अब बहुत जल्द ही गुज़रे जमाने की बात हो जाएगी, क्योंकि शोधकर्ताओं ने एक ऐसी तकनीक विकसित की है, जो इसे ठंडा रखने में मदद करेगी. टेक्सास ए एंड एम यूनिवर्सिटी के भौतिकी विज्ञान के प्रोफ़ेसर जेएरो सिनोवा और उनके सहयोगियों ने बताया कि वर्तमान समय में लैपटॉप काफ़ी पावरफुल बनाए जा रहे हैं, लेकिन उस लिहाज़ से उसका आकार दिन-प्रतिदिन छोटा होता जा रहा है, जिसके चलते वे काफ़ी गर्म हो जाते हैं. इस कारण आप भी कभी-कभी परेशान हो जाते हैं, मगर बहुत जल्द आपको इस परेशानी से निजात मिलने वाली है.

सिनोवा ने कहा कि यह समस्या इंफॉर्मेशन प्रोसेसिंग के समय देखी जाती है. जिसके दौरान लैपटॉप और कुछ अन्य डिवाइस इलेक्ट्रिक ऊष्मा प्रवाहित करते हैं. हो सकता है कि यही अत्याधिक ऊष्मा आपके लैपटॉप को पिघला दे. उन्होंने कहा कि इस दरम्यान काफ़ी ऊष्मा बर्बाद भी होती है. इस तरह उनके शोध ने इंफॉर्मेशन प्रोसेसिंग के एक नए विकल्प की तलाश की है, जो लैपटॉप और पीसी को अधिक गर्म होने से बचाएगा. उन्होंने बताया कि उनका शोध, इलेक्ट्रॉनों के घूमने की गति , खुली आंखों से न दिखने वाले सूक्ष्म कणों और इलेक्ट्रॉन के घूमने की दिशा को रिकॉर्ड कर इंफॉर्मेशन प्रोसेसिंग को पूरा करने की प्रक्रिया पर आधारित है. उन्होंने बताया कि प्रोसेसिंग इंफॉर्मेशन की प्रक्रिया में इंफॉर्मेशन उत्पन्न होना, इंफॉर्मेशन को ब्रॉडकास्ट करना और इंफॉर्मेशन को पढ़ना बहुत ज़रूरी होता है, लेकिन उक्त पूरी प्रक्रिया कैसे होती है, इसके बारे में अभी कुछ भी पता नहीं चल पाया है.

सिनोवा ने कहा कि अब तक हुए शोध के अनुसार जो डिवाइस हमने डिज़ाइन किया है, वह प्रक्रिया पूरी करने के लिए इलेक्ट्रॉन जिस दिशा में घूमता है, उससे ख़ुद को जोड़ता है. उसके बाद उपकरण की दूसरी जगह पर हम इलेक्ट्रॉन को ट्रांसमिट करते हैं, लेकिन उसके बाद भी घूमने की प्रक्रिया जारी रहती है और अंत में हम इलेक्ट्रान के घूमने की दिशा को वोल्टेज के ज़रिए मापते हैं. हालांकि सबसे बड़ी चुनौती उस उपकरण को बनाने की है जिससे विशेष दिशा में घूमने की प्रक्रिया की मालूम हो सके.

उन्होंने कहा कि वैसे ट्रांसमिशन कोई ख़ास समस्या नहीं है. इस नए डिवाइस में काफ़ी प्रैक्टिकल क्षमता है (हालांकि यह सिर्फ़ सेमी कंडक्टर घूमने वाले उपकरण के लिए है). इसकी सबसे बड़ी ख़ासियत यह है कि इसे कमरे के तापमान के अनुसार ही ऑपरेट किया जा सकता है, जिसे आज तक कोई हासिल नहीं कर पाया है. यह सूचना प्रक्रिया को असरदार तरीक़े से संपन्न करा सकता है. इस शोध को हाल ही में नेचर फिजिक्स नामक पत्रिका में भी प्रकाशित किया गया है.

हालांकि इस शोध से उन लोगों को ज़्यादा ख़ुशी मिलेगी, जिन्हें इस परेशानी से दो-चार होना पड़ता है. हो सकता है काम के दौरान आपका लैपटॉप गर्म हो जाता होगा और बीच में ही आपको काम रोकने को मजबूर होना पड़ता है. इसी परेशानी को देखते हुए वैज्ञानिकों ने इसका हल निकालने का प्रयास किया और काफ़ी हद तक इसमें उन्हें सफलता भी मिली है, यह उपकरण कब तक बाज़ार में आएगा इसका खुलासा नहीं किया गया है, लेकिन इसके आने से कुछ तो राहत मिलेगी. लोग बेफ़िक्र होकर काम करेंगे. उस वक़्त उन्हें लैपटॉप गर्म होने की चिंता नहीं होगी.

एप्पल ने बाज़ार में नैनो उतारा

टाटा की नैनो से हर कोई वाक़िफ़ है. गाड़ी के शौक़ीनों के लिए नैनो कार ख़ुशख़बरी लेकर आई थी, लेकिन अब गैजेट और गिज़्मों के दीवाने भी नैनो का मज़ा उठा सकते हैं. हमारा मतलब टाटा की नैनो से नहीं है. यहां हम बात कर रहे हैं एप्पल के नए आईपॉड नैनो की. हाल ही में अंतरराष्ट्रीय कंपनी एप्पल ने इसे लांच किया है. म्यूजिक और वीडियोग्राफी की हॉबी रखने वालों के लिए यह वाकई एक अच्छी ख़बर है. वैसे तो नैनो सीरीज़ के पहले और दूसरे जेनरेशन के पोर्टेबल मीडिया प्लेयर बाज़ार में आ चुके हैं, लेकिन कई नए फ़ीचर्स और लुक्स के साथ लांच हुए इस नैनो आइपॉड की बात ही कुछ और है. चलिए हम आपको इसकी ख़ूबियों से रूबरू करवाते हैं. इसका 2.2 इंच का वाइड डिस्प्ले सभी तरह के वीडियो फॉर्मेट के लिहाज़ से एकदम सटीक है. इतना ही नहीं, इसका एच.264 हाई डिफिनेशन वीडियो कैमरा किसी भी वीडियो को 640.480 पिक्सल और 30 एफपीएस के फ्रेम रेट के साथ शूट करने की क्षमता रखता है. स्लिम लुक और कई आकर्षक रंगों में उपलब्ध इस आईपॉड की साउंड क्वालिटी भी ग़ज़ब की है. और तो और, अगर आप संगीत में प्रयोग करना चाहते हैं तो इसके ऑटोमेटिक जीनियस मिक्सर से अपनी लाइब्रेरी को डीजे क्वालिटी में तब्दील कर सकते हैं. हालांकि चीन ने सस्ती दरों पर कई मीडिया प्लेयर बाज़ार में उतार रखे हैं, लेकिन उनकी क्वालिटी और लाइफ़ का कोई भरोसा नहीं है. ऐसे में नैनो मीडिया रिकॉर्डर एक नई उम्मीद जगाता है. इसमें मेमोरी पर भी ख़ास ध्यान दिया गया है. 8 जीबी और 16 जीबी में उपलब्ध इस मॉडल में आप अनलिमिटेड गाने और वीडियो स्टोर कर सकते हैं. सबसे ख़ास बात है कि जिम में वर्कआउट करते समय सेटिंग के ज़रिए आप अपने हर स्टेप का ब्योरा रख सकते हैं.

तो फिर देर किस बात की? अच्छा, तो आप इसकी क़ीमत के बारे में सोच रहे हैं? आपको बता दें कि इसकी क़ीमत सिर्फ़ 9,400 रुपये है.

कैनन का बेहतरीन कैमरा आईएक्सयूएस 200 आईएस

यूं तो कई बड़ी कंपनियां रोज़ कोई न कोई कैमरा बाज़ार में उतारती रहती हैं, लेकिन वे मॉडल बाज़ार से कब ग़ायब हो जाते हैं, पता भी नहीं चलता. ऐसे में कुछ ऐसे ब्रांड भी हैं जो देर से आते हैं, लेकिन जब भी बाज़ार में आते हैं, छा जाते हैं. उन प्रतिष्ठित ब्रांड्स में एक नाम कैनन का भी है. हाल ही में कैनन ने 6 नए कैमरे बाज़ार में उतारे हैं. इनमें से आईएक्सयूएस 200 आईएस की तो बात ही निराली है. यह अपनी तरह का पहला कैमरा है, जिसमें एलसीडी टच स्क्रीन का फंक्शन है. इस फ़ीचर की मदद से आप ऑब्जेक्ट के जिस हिस्से को कैप्चर करना चाहते हैं, बस तस्वीर के उस हिस्से को स्क्रीन में टच कीजिए. आपको मिलेगा सिर्फ़ उसी हिस्से का बेहतरीन फोटो. इस तरह आपको अनावश्यक दृश्यों को बाद में एडिट करने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी. इसका टच स्क्रीन फंक्शन आपकी अंगुलियों के इशारे पर कैमरे की हर सेटिंग तक आपको पहुंचाएगा. इसकी 28 एमएम की चौड़ी स्क्रीन और 4 गुना ज़ूम लेंस इसे अन्य कैमरों से बेहतर बनाता है. इसके अलावा इसका ब्लैक स्टाइलिश लुक भी आपको अपनी तरफ़ खींचेगा.

इसके ज़रिए खींची गई फोटो को अलग-अलग मोड में देखने के लिए इसमें 22 मोड ऑप्शंस हैं, जिनकी मदद से आप अपने मुताबिक़ तस्वीरों को एंगल दे सकते हैं. 12.1 मेगापिक्सल से लैस इस कैमरे को अपेक्षाकृत कम रोशनी में भी इस्तेमाल किया जा सकता है. इसके ग्राफिक्स और लाइट सेटिंग बाहरी प्रकाश को ऑटोमेटिकली सेट कर देते हैं. इसलिए अब चाहे रात हो या दिन, बेफ़िक्र हो जाइए. इसका इमेज स्टेबिलाइज़र सब कुछ संभाल लेगा. इसके अलावा टीवी आउटपुट, टच एएफएस, एचडी मूवी और एक्टिव डिस्प्ले जैसे फंक्शंस इसकी गुणवत्ता में चार चांद लगाते हैं. इसकी क़ीमत 20,995 रुपए है. इसकी क़ीमत में और इज़ाफ़ा हो, इससे पहले ही झट से बाज़ार जाइए और ले आइए अपने साथ स्टाइलिश कैमरा.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

ऐसर का ट्रिपल धमाका

एक नहीं, दो नहीं, बल्कि ऐसर ने तीन नए हैंडसेट एक साथ भारतीय बाज़ार में लांच कर दिए. मतलब यह कि आगाज़ ही ट्रिपल धमाके के साथ. इसके पीछे कंपनी का मक़सद भारतीय मोबाइल बाज़ार पर क़ब्ज़ा करना है. सबसे अहम बात यह कि तीनों मोबाइल फोन टच स्क्रीन सुविधा से लैस हैं, ताकि यूजर्स को अपनी ओर आकर्षित किया जा सके. इन मोबाइलों की क़ीमत 12 हज़ार से लेकर 35 हज़ार रुपये के बीच है. ऐसर के इन नए मोबाइलों के नाम हैं टच ई-101, टच ई-200 और टच मोबाइल. उक्त मोबाइल सस्ते और टेक्नोलॉजी के लिहाज़ से काफ़ी बेहतर हैं. लिहाज़ा निश्चित तौर पर यूजर्स इसे पसंद करेंगे.

संभवत: टच ई-101 इस सीरीज़ का सबसे सस्ता मोबाइल फोन हो सकता है, लेकिन इसका मतलब यह कतई नहीं है कि इसमें फ़ीचर्स कम होंगे. फ़ीचर्स के मामले में यह किसी अन्य मोबाइल फोन से कम नहीं है. टच ई-101 में 3.2 इंच का टच स्क्रीन लगा हुआ है और यह विंडोज मोबाइल 6.5 टेक्नोलॉजी से लैस है. यह बहुत कम क़ीमत पर आपको विंडोज मोबाइल जैसा एहसास दिलाएगा. जहां तक हार्डवेयर की बात है तो इस मामले में भी यह आपको निराश नहीं करेगा. इसमें 256 एमबी का रैम और 521 एमबी का रोम लगा हुआ है. इसमें दो मेगापिक्सल का कैमरा लगा हुआ है. वैसे यह लेटेस्ट फ़ीचर्स से लैस है, लेकिन कुछ फ़ीचर्स इसमें नहीं दिए गए हैं और न ही इसमें वाई-फाई और 3 जी सुविधा है. हो सकता है यह कमी आपको महसूस हो.

बाज़ार में आपको टच ई-101 के लिए 11,900 रुपये चुकाने पड़ेंगे. यूजर्स इसे कितना पसंद करेंगे, यह तो आने वाला समय बताएगा. लेकिन, एक बात साफ़ है कि ऐसर ने भारत में अपने पैर जमाने की कोशिश शुरू कर दी है.

फोटो-सुनील मल्होत्रा

सिंगापुर लिमिटेड के मोबेल टेक्नोलॉजी के एमडी अर्थर टैन और सैलोरा इंटरनेशनल लिमिटेड के एमडी गोपाल जिवराजक नई दिल्ली में एक कार्यक्रम के दौरान मोबाइल लांच करते हुए.

विज्ञापन हेतु संपर्क करें : 9811205225 email : advt@chauthiduniya.com

पुरुष और महिला हॉकी संघों के विलय के बाद हॉकी इंडिया का गठन कर एक नई शुरुआत का प्रयास किया गया, लेकिन यह भी हॉकी को पटरी पर लाने में सफल नहीं हो पा रहा है.

पराजय दर पराजय, कुछ तो गड़बड़ है

मोहित मिश्र

ऑस्ट्रेलिया से वन-डे सीरीज़ में हार पर भड़किए मत... चिंता कीजिए. चिंता इस बात की नहीं कि टीम इंडिया नंबर वन के पायदान से दूर हो गई, बल्कि चिंता इस बात की कि आख़िर कुछ तो गड़बड़ है, जो साफ़ देखी जा सकती है. यह सिर्फ़ संयोग नहीं कि टी-20 वर्ल्ड कप, चैंपियंस ट्रॉफी और अब ऑस्ट्रेलिया सीरीज़ में भारत को हार मिली है. लगातार तीन बड़ी सीरीज़ और लगातार तीन बार एक ही नतीजा. आख़िर क्या है ऐसा, जो टीम इंडिया के लिए सबसे बड़ी मुसीबत है. यह बल्लेबाज़ी नहीं है. यह गेंदबाज़ी भी नहीं है और न ही यह आरामतलब फील्डिंग है. बल्कि, ध्यान से देखने पर पता चलेगा कि सीज़न की शुरुआत से ही विरोधियों को घेर लेने वाली कप्तानी ग़ायब है.

2007 वर्ल्ड कप में हार के बाद भारतीय क्रिकेट कुछ महीनों के लिए जैसे अंधकार युग में चला गया था. क्रिकेट खेलने, लिखने और यहां तक कि देखने वालों की उम्मीदें कम नहीं, बल्कि ख़त्म हो गई थीं. सचिन ने कप्तानी से इंकार कर दिया था. उनके साथ सौरव और द्रविड़ ने तो साउथ अफ्रीका जाने तक से इंकार कर दिया था. उसके बाद जो हुआ, इतिहास है. लेकिन इस पूरे टूर्नामेंट के बाद कप्तानी का एक युग धोनी के हाथों से शुरू हुआ था. चाहे टी-20 वर्ल्ड कप के फाइनल में यूसुफ पठान को पहला मैच खिलाने का फ़ैसला हो या बॉर्डर-गावस्कर ट्रॉफी के आख़िरी मैच में गांगुली को कप्तानी देने का. अब न तो वह धोनी नज़र आ रहा है, जिसने ऑस्ट्रेलिया को उसी के घर में वन-डे सीरीज़ में मात दी थी, जिसने प्रवीण कुमार जैसे खिलाड़ी को सीबी सीरीज़ के अहम मैच में बड़ी भूमिका दी. लेकिन पिछली तीन सीरीज़ में धोनी कहीं खोए लगे. पिछली तीनों अंतरराष्ट्रीय सीरीज़ पर नज़र डालिए. आप पाएंगे कि एक ही ग़लती बार-बार हुई है. मौक़े को भांप न पाने की ग़लती. चैंपियंस ट्रॉफी में भारत के गेंदबाज़ पिटे, लेकिन धोनी ने गेंदबाज़ों से बात तक नहीं की. यह कप्तान के साथ एक कीपर का भी फ़र्ज़ होता है. फील्ड प्लेसिंग में भी पिछले साल ऑस्ट्रेलिया सीरीज़ जैसी कोई नई सोच नहीं थी. ऐसा लग रहा था कि जैसे खिलाड़ियों को काम दे कर वह अपना पल्ला झाड़ चुके थे. अगर ऐसा था तो टीम इंडिया मैदान में उतरने से पहले ही मैच हार चुकी थी. लेकिन अगर ग़ौर से देखें तो पाएंगे कि सिर्फ़ अंतरराष्ट्रीय मैच ही नहीं, बल्कि साउथ अफ्रीका में हुए आईपीएल से ही धोनी खोए-खोए लग रहे थे. उस वक़्त ऐसा लग रहा था कि पद्म पुरस्कारों पर हुए विवाद की वजह से धोनी मीडिया से नाराज़ हैं. लेकिन कहानी वहां ख़त्म नहीं हुई, बल्कि वहीं से शुरू हुई. कप्तान के तौर पर धोनी हमेशा अपनी बात मज़बूती से रखते आए हैं और अपने पसंदीदा खिलाड़ियों के लिए वह चयनकर्ताओं से खुल कर लड़ते भी हैं. लेकिन साफ़ था कि वह टी-20 वर्ल्ड कप और चैंपियंस ट्रॉफी के लिए भेजी जाने वाली टीम से ख़ुश नहीं थे. धोनी की यह नाराज़गी शायद अब तक ख़त्म नहीं हुई है. अब ज़रा ऑस्ट्रेलिया सीरीज़ के दौरान धोनी के बयानों पर नज़र डालिए तो ऐसा लगेगा कि जैसे वह लाचार हैं. टीम उनके साथ वैसे नहीं खड़ी है, जैसी कुछ महीने पहले तक थी. वह लगातार यह कहते रहे कि टीम में प्रतिभा की कमी नहीं है, बल्कि हार की वजह खिलाड़ियों का रवैया है. ऐसे में सवाल यह उठता है कि आख़िर ऐसा हुआ क्या कि धोनी क्रिकेट से विमुख लग रहे हैं. जानकार मानते हैं कि वह कुछ खिलाड़ियों को टीम में शामिल करना चाहते हैं, जबकि चयनकर्ता इसके लिए राज़ी नहीं हैं. साथ ही वह चाहते हैं कि कुछ खिलाड़ियों को बाहर किया जाए, लेकिन उनकी इस बात के लिए भी चयनकर्ता राज़ी नहीं हैं. ऐसे में धोनी ने पहले तो अपनी नाराज़गी का इज़हार किया, लेकिन अब वह इस बात में ज़्यादा दिलचस्पी ही नहीं ले रहे हैं कि टीम में कौन है, कौन नहीं. ऑस्ट्रेलिया सीरीज़ में व्यक्तिगत तौर पर उनका प्रदर्शन ख़राब नहीं रहा. एक शानदार शतक और एक अर्द्धशतक के साथ उनकी बल्लेबाज़ी का औसत 57 रहा, लेकिन टीम औसत से ऊपर नहीं बढ़ पाई और रिकी पोंटिंग भारत को क़रीब-क़रीब मुंह चिढ़ा कर चले गए. जबकि असलियत यह है कि भारत से ज़्यादा ऑस्ट्रेलिया की टीम परेशान थी. उनके माइकल क्लार्क और ब्रैड हैडिन जैसे बल्लेबाज़ और नेथन ब्रैकन जैसे गेंदबाज़ भारत आए ही नहीं थे. यहां तक कि भारत में सीरीज़ के दौरान ही उन्हें ब्रेट ली, जेम्स होप्स, हेनरी के मोज़ेज़ जैसे खिलाड़ियों को गंवाना पड़ा. यहां तक कि उन्हें आख़िरी ग्यारह इकट्ठे करने में भी दिक़्क़त हो रही थी. ऐसे में पोंटिंग और धोनी की कप्तानी ने सीरीज़ के नतीजे का फ़ैसला किया. टीम इंडिया के चयनकर्ताओं को समझना होगा कि टीम चुन कर ही उनका काम पूरा नहीं हो जाता, बल्कि उनकी ज़िम्मेदारी में टीम का प्रदर्शन और उसकी वजहें भी आती हैं. और अगर कहीं चयनकर्ताओं और कप्तान के बीच टकराव है तो उसे तुरंत दूर करना होगा, क्योंकि यही ज़िम्मेदारी उन्हें दी गई है. श्रीलंका से मुक़ाबला जारी है. यह वही टीम है जिसके ख़िलाफ़ वन-डे सीरीज़ जीतकर भारत ने इतिहास रचा था. टीम इंडिया को उसके लगातार शानदार प्रदर्शन पर नज़र रखनी होगी. टीम में कौन हो सकता था, कौन नहीं, इस पर विचार करने का वक़्त गुज़र चुका है. वरना धोनी का यह बयान ख़ुद में काफी कुछ कहता है कि मुझे नहीं पता कि मैं 2011 वर्ल्ड कप तक कप्तान रहूंगा या नहीं.

(लेखक खेल समीक्षक हैं)

feedback@chauthiduniya.com

राजनीति की भेंट चढ़ता हॉकी इंडिया

HOCKEY INDIA

राष्ट्रीय खेल हॉकी की दशा-दुर्दशा से प्राय: हर कोई वाक़िफ़ है और इसकी बीमारी दूर करने की कोशिशों से भी. यह भारत ही हो सकता है, जहां राष्ट्रीय खेल का भविष्य भंवर में फंसा हो. जब तक हॉकी महासंघ के कर्ताधर्त्ता के पी एस गिल रहे, यह लगातार पतन के गर्त में जाता रहा. जब हदें पार हो गईं तो हॉकी फेडरेशन को भंग कर दिया गया और तर्क यह दिया गया कि इसकी बेहतरी के लिए एक नए संगठन का निर्माण किया जाएगा. हुआ भी. पुरुष और महिला हॉकी संघों का विलय कर हॉकी इंडिया का गठन किया गया. असलम शेर ख़ान को भारतीय ओलंपिक संघ ने अस्थाई तौर पर हॉकी इंडिया का महासचिव बनाया.

इसके बाद भी हॉकी की हालत कितनी सुधरी है, इसका सबूत है, हॉकी इंडिया को अस्तित्व में आए लंबा अरसा हो चुका है, लेकिन इसके पदाधिकारियों का चुनाव अभी तक नहीं हो पाया है. यह हॉकी की हालत सुधारने के प्रति हमारी संजीदगी का नमूना है. अब भला खेल मंत्री को कौन बताए कि जितना वक़्त वह क्रिकेट की आलोचना में बर्बाद करते हैं, हॉकी पर यदि उनकी ज़रा-सी भी नज़रें इनायत हो जातीं तो संभवत: हालत यह नहीं होती.

ताज़ा स्थिति यह है कि हॉकी इंडिया के लिए 18 नवंबर को होने वाले चुनाव को भी टाल दिया गया है. वहीं हर तरफ़ से विवादों में घिरी हॉकी इंडिया के महासचिव असलम शेर ख़ान ने भी इस्तीफ़ा दे दिया है. उनका भी इस्तीफ़ा उस वक़्त आया है, जब अंतरराष्ट्रीय हॉकी संघ के पर्यवेक्षक टोनी ओंद्राज हॉकी इंडिया के भविष्य को लेकर इसके अधिकारियों से मिलने वाले हैं. ऐसे में भविष्य साफ़ नज़र आ रहा है. हॉकी की बेहतरी के नाम पर बना हॉकी इंडिया भी राजनीतिक दलदल में फंसता जा रहा है. इसे वापस पटरी पर लाने के नाम पर जितनी भी खींचतान और कोशिश की जाती है, यह उतना ही पतन के गर्त में समाता चला जाता है.

हॉकी की बेहतरी के नाम पर बना हॉकी इंडिया भी राजनीतिक दलदल में फंसता जा रहा है.

सभी फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

जनता के पैसे पर अय्याशी का खेल

भारत में किसी भी बड़े खेल आयोजन में बड़े स्तर की आर्थिक घोटालेबाज़ी भी सामने आती है. इसकी सबसे बड़ी मिसाल है, पिछली बार जब भारत में क्रिकेट विश्वकप आयोजित किया गया था तो वित्तीय अनियमितताओं के लिए तत्कालीन बीसीसीआई अध्यक्ष जगमोहन डालमिया पर शिकंजा कसा. इसकी वजह से उन पर मुक़दमा भी हुआ, लेकिन अंतत: वह बच निकले. खेल संघ की कुर्सियों की शोभा बढ़ा रहे दिग्गजों को खेल की बुनियादी जानकारी भले न हो, गुनाह के बाद बच निकलने के खेल में वे पूरे उस्ताद होते हैं.

फ़िलहाल दिल्ली राष्ट्रमंडल खेल के आयोजन की तैयारियों को लेकर पूरी ज़ोर-आज़माइश चल रही है. यह हर कोई जानता है कि तैयारियां अपने तयशुदा समय से काफ़ी पीछे चल रही हैं. इसका ख़ामियाज़ा यह हुआ कि बढ़ती महंगाई ने इसे भी अपनी चपेट में ले लिया है. मुमकिन है, इसकी कोई और भी वजह हो. पहले तैयारी का सारा ज़िम्मा दिल्ली सरकार के अधीन था, लेकिन तैयारी में हुई देरी ने कई सवाल खड़े कर दिए हैं. बात तो यहां तक चली कि तैयारियों की कमान कांग्रेसी युवराज राहुल गांधी के हाथों में सौंप देनी चाहिए, तभी तैयारियों की रेल अपनी पटरी पर आ सकती है. ऐसा तो नहीं हुआ, लेकिन केंद्र सरकार ने तैयारियों में तेज़ी लाने के लिए अपने ख़जाने का मुंह खोल दिया. हाल ही में सरकार ने 1620 करोड़ रुपये आयोजन समिति को आवंटित किए हैं. ग़ौरतलब है कि 2010 में तीन से 14 अक्टूबर तक होने वाले राष्ट्रमंडल खेलों के लिए पहले ही 767 करोड़ रुपये उपलब्ध कराए गए थे.

राष्ट्रमंडल खेल के लिए निर्माणाधीन शिवाजी स्टेडियम.

तमाम तैयारियों और दूसरी चीज़ों पर ख़र्च के लिए भी कई तरह के बजट की मंज़ूरी दी गई है, लेकिन सवाल उठता है कि इन सब पैसों पर नज़र कौन रख रहा है? किसी तरह की हेराफेरी के लिए किसे ज़िम्मेदार माना जाएगा? ऐसे में यह सवाल उठना जायज़ है कि राष्ट्रमंडल खेलों को आवंटित होने वाली राशि की निगरानी होनी चाहिए, ताकि जनता के पैसों पर अय्याशी करने वाले लोग देश को धोख़ा न दे सकें.

2011 विश्वकप क्रिकेट

भारत का ग्रुप आसान, राह मुश्किल!

क्रिकेट का अगला विश्वकप भारतीय उपमहाद्वीप में होना है और साल 2011 में होने वाली इस प्रतियोगिता के सभी मैचों के तारीख़ें घोषित कर दी गई हैं. इस शेड्यूल के मुताबिक़, विश्वकप 2011 के सभी मैच भारत, श्रीलंका और बांग्लादेश में होंगे. ओपनिंग समारोह 17 फरवरी को बांग्लादेश में ढाका में, जबकि फ़ाइनल मैच दो अप्रैल को मुंबई के वानखेड़े स्टेडियम में खेला जाएगा. ग़ौरतलब है कि पहले पाकिस्तान भी आयोजक देशों में शामिल था, लेकिन लगातार आतंकी हमलों का शिकार होने की वजह से अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट परिषद ने पाकिस्तान में मैच न कराने का फ़ैसला लिया है. जो मैच पाकिस्तान में होने वाले थे, अब वे सारे मैच श्रीलंका में होंगे.

2011 के विश्वकप में कुल 14 टीमें भाग लेंगी. इनमें टेस्ट मैच खेलने वाली सभी दस टीमों के अलावा चार क्वालिफाइंग टीमें भी होंगी. सभी टीमों को दो ग्रुपों में बांटा गया है. ग्रुप ए में ऑस्ट्रेलिया, पाकिस्तान, न्यूज़ीलैंड, श्रीलंका, ज़िम्बाब्वे, कनाडा और केन्या की टीमें होंगी.

ग्रुप बी में भारत, दक्षिण अफ़्रीका, इंग्लैंड, वेस्टइंडीज़, बांग्लादेश, आयरलैंड और नीदरलैंड की टीमें शामिल हैं. यदि देखा जाए तो ग्रुप ए के मुक़ाबले भारत को आसान ग्रुप मिला है. भारत को दक्षिण अफ़्रीका, इंग्लैंड और वेस्टइंडीज़ से ही कड़ी टक्कर मिलने की उम्मीद है. लेकिन क्रिकेट का खेल तो अनिश्चितताओं से भरा है, इसलिए कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती. ख़ासकर भारत तो इस बात को कभी भूल ही नहीं सकता. 2007 के विश्वकप में बांग्लादेश से हार ही प्रतियोगिता के पहले दौर में भारत के बाहर होने की वजह बनी थी. फिर भी क्वार्टर फाइनल तक पहुंचने में भारत को मुश्किल नहीं आएगी, इतना तो तय है.

शेड्यूल के मुताबिक़, पहले दौर में राउंड रोबिन लीग का मुक़ाबला खेला जाएगा, पहले दौर के बाद आठ टीमें क्वार्टर फ़ाइनल में एक-दूसरे से भिड़ेंगी. उसके बाद सेमीफ़ाइनल और फ़ाइनल का मुक़ाबला खेला जाएगा.

ICC Cricket World Cup 2011

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback@chauthiduniya.com

आशुतोष गोवारिकर असिन को लेकर एक फ़िल्म बना रहे थे, लेकिन अचानक न जाने क्या हुआ कि मामला अटक गया और असिन को बाहर का रास्ता देखना पड़ गया.

गौहर ख़ान बड़े पर्दे पर

मॉडलिंग और विज्ञापनों से अपने करियर की शुरुआत करने वाली गौहर ख़ान अब बड़े पर्दे पर भी अपने क़दम बढ़ाने के लिए तैयार हैं. यशराज बैनर की जल्द ही रिलीज़ होने वाली फ़िल्म *रॉकेट सिंह सेल्समैन-ऑफ द इयर* में वह बतौर अभिनेत्री नज़र आएंगी. इससे पहले भी वह बड़े पर्दे पर आ चुकी हैं, लेकिन आइटम गर्ल बनकर. कुछ समय पहले वह *झलक दिखला जा* के सेट पर भी आ चुकी हैं. वहीं से गौहर को ऑडिशन के कई ऑफ़र मिले. वह मधुर भंडारकर की फ़िल्म में एक आइटम सांग पर अपना जलवा बिख़ेर चुकी हैं, लेकिन फ़िल्म में अभिनेत्री के रूप में वह पहली बार नज़र आएंगी. देखना यह है कि गौहर अपनी इस नई भूमिका में दर्शकों का दिल जीत पाती हैं या नहीं.

यशराज कैंप में शमां की एंट्री

टीवी और फ़िल्मों में काम कर चुकी शमां सिकंदर ने टीवी शो *ये मेरी लाइफ़ है* से काफ़ी नाम कमाया. उन्होंने कई फ़िल्मों में छोटे रोल तो किए, लेकिन उन्हें किसी बड़ी फ़िल्म में काम करने का मौक़ा नहीं मिल पाया. वह बड़े पर्दे पर काम करना चाहती थीं, ताकि अपनी क़िस्मत को चमका सकें. अभी हाल ही में उन्हें यशराज बैनर तले काम करने का मौक़ा मिला है, लेकिन छोटे पर्दे पर. यह सीरियल सोनी पर जल्द ही शुरू होने वाला है. हो सकता है कि छोटा पर्दा शमां को वहां पहुंचा दे, जहां की उन्हें ख़्वाहिश है. पंजाबी फ़िल्मों में काम करने के बाद उन्होंने गुजरात दंगों पर आधारित फ़िल्म *चांद बुझ गया* से आमिर ख़ान के छोटे भाई फ़ैसल ख़ान के साथ डेब्यू किया था, लेकिन इस फ़िल्म से भी निराशा ही हासिल हुई थी. तभी उन्होंने अपना मन छोटे पर्दे पर आने का बना लिया था. सच तो यह है कि अभिनेत्रियां यशराज बैनर के साथ काम करने को तरसती हैं. अब पर्दा चाहे बड़ा हो या छोटा, शमां को काम करने का मौक़ा तो मिला और वह भी यशराज कैंप के साथ. शमां को ख़ुशी इस बात की होनी चाहिए कि उनकी शुरुआत एक बड़े कैंप से हुई है जो उन्हें कामयाबी की राह पर ले जाएगी.

मैं बड़े पर्दे पर काम करना चाहती हूं, ताकि अपनी क़िस्मत को चमका सकूं . अभी हाल ही में मुझे यशराज बैनर तले काम करने का मौक़ा मिला है, लेकिन छोटे पर्दे पर. यह सीरियल सोनी पर जल्द ही शुरू होने वाला है.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

ऋतिक अब मोटे होंगे

अगर सूत्रों से मिले संकेतों पर भरोसा करें तो ऋतिक रोशन बड़ी बेसब्री से संजय लीला भंसाली की फ़िल्म *गुज़ारिश* की शूटिंग ख़त्म होने का इंतज़ार कर रहे हैं. ऐसी कोई बात नहीं है कि उन्हें इस फ़िल्म की शूटिंग में परेशानी हो रही है, इसलिए इंतज़ार कर रहे हैं. दरअसल वह अपनी अगली फ़िल्म को लेकर बेहद चिंतित हैं. संजय ख़ान की अगली फ़िल्म *वेलकम टू जंगल* के लिए उन्हें काफ़ी मेहनत करनी होगी. इस फ़िल्म के लिए ऋतिक को अपना वजन बढ़ाना है. ज़्यादातर लोगों को वजन कम करने की चिंता खाए जाती है, जबकि उनकी चिंता इसके ठीक विपरीत है. दरअसल वह इस फ़िल्म में अपंग की भूमिका निभा रहे हैं. संजय ख़ान की इस फ़िल्म का निर्देशन करेंगे फारूख़ कबीर. वैसे आपको बता दूं कि यह फ़िल्म अभी अपनी स्क्रिप्ट के स्तर पर ही है और कलाकारों में भी सिर्फ़ ऋतिक और ज़ायद ख़ान के नाम पर ही सहमति बन पाई है. यानी अभी ज़्यादा कुछ तय नहीं हो पाया है. लेकिन इतना तो तय है कि इस फ़िल्म में जो भी होंगे, उन्हें अपना हुलिया काफ़ी बदलना होगा. हालांकि इस फ़िल्म में अभी बहुत कुछ तय होना बाक़ी है, लेकिन इतना तो पक्का लग रहा है यह फ़िल्म होगी पूरी मनोरंजक. साथ ही हर उम्र और पसंद के दर्शकों का भरपूर मनोरंजन भी करेगी.

असिन को नहीं जंची भूमिका

बॉलीवुड की फ़िल्मों में भूमिका झटकने का खेल ख़ूब होता है. कई बार फ़िल्मों में किसी रोल के लिए नाम तो किसी और का चल रहा होता है, लेकिन उसे झटक ले जाता है कोई और. ख़बर है कि *लगान* जैसी फ़िल्म निर्देशित कर सुर्ख़ियों में रहे आशुतोष गोवारिकर की आने वाली फ़िल्म *खेलेंगे हम जी जान से* में दीपिका पादुकोण ने प्रमुख भूमिका के लिए हां कर दी है. पहले इस भूमिका के लिए असिन के नाम की चर्चा चल रही थी. उसने इस फ़िल्म में काम करने से असमर्थता जता दी या निर्देशक ने उसे लिया ही नहीं, यह तो पता नहीं, लेकिन दीपिका इस फ़िल्म में काम कर रही है, यह ख़बर पक्की है. यह ख़बर इसलिए भी पक्की है, क्योंकि स्वयं आशुतोष गोवारिकर की पत्नी सुनीता ने यह बात लोगों को बताई है. ज़ाहिर है, यह ख़बर ग़लत नहीं हो सकती. वैसे असीन के मुताबिक़, डेट की प्रॉब्लम होने के कारण उसने इस फ़िल्म में काम करने से मना किया है. लेकिन बॉलीवुड के भीतर की ख़बर रखने वालों का मानना है कि *लंदन ड्रीम्स* के फ्लॉप होने के बाद से असिन फ़िल्मों को लेकर बहुत ही चूजी हो गई हैं. तो इसका मतलब यही माना जाए कि आशुतोष जो पीरियड फ़िल्म बना रहे हैं, असिन उसे अपनी कसौटी पर खरा नहीं मान रही हैं. असिन के इंकार के बाद आशुतोष ने इस फ़िल्म के लिए सोनम कपूर और जेनेलिया डिसूजा के नामों पर भी विचार किया था, लेकिन अंततः उन्होंने दीपिका को फ़िल्म में लेना स्वीकार किया. ज़ाहिर है, वह अपने चयन को लेकर बेहद ख़ुश व उत्साहित हैं और शूटिंग से पहले अपने किरदार को सही तरह से परदे पर उतारने के लिए जमकर होमवर्क भी कर रही हैं.

आने वाली फ़िल्में

पा

पा पिता-पुत्र के संबंधों पर केंद्रित फ़िल्म है. किसी फ़िल्म की ऐसी कहानी हमें दुर्लभ ही देखने को मिलती है. इस फ़िल्म में मुख्य भूमिका निभाई है अभिषेक बच्चन, अमिताभ बच्चन, विद्या बालन और परेश रावल ने. बिग बी इस फ़िल्म में अभिषेक के पुत्र की भूमिका निभा रहे हैं जबकि उनके पुत्र ने अमिताभ के पिता की भूमिका निभाई है. दर्शक पिता-पुत्र की जोड़ी को फ़िल्म में एक साथ देखने का बेसब्री से इंतज़ार कर रहे हैं. इस फ़िल्म की कहानी एक 13 वर्षीय बच्चे के बारे में है जो प्रोगेरिया नामक रोग से ग्रसित है. इस रोग में मस्तिष्क का आकार बड़ा हो जाता है और उस पर नसें उभरी दिखाई देती हैं. दांत और आंखें भी इस रोग से प्रभावित हो जाती हैं. इस फ़िल्म के गीत लिखे हैं स्वानंद किरकिरे ने जबकि संगीत दिया है दक्षिण के प्रमुख संगीतकार इल्लैयाराजा ने. एबी कॉर्प की यह फ़िल्म चार दिसंबर को प्रदर्शित होगी.

रेडियो

बतौर अभिनेता, यह हिमेश रेशमिया की तीसरी फ़िल्म है. गायक और संगीतकार के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज़ करा चुके हिमेश एक बार फिर दर्शकों को अपनी अभिनय प्रतिभा से रू-ब-रू कराने वाले हैं. ज़्यादातर फ़िल्मों की तरह इसे भी प्रेम कथा के इर्द-गिर्द बुना गया है. हिमेश रेशमिया के अलावा इसमें दूसरे कलाकार हैं, परेश रावल, शहनाज़ और सोनल सहगल. फ़िल्म के निर्देशक हैं ईशान त्रिवेदी जबकि संगीत दिया है स्वयं हिमेश ने.

MURUGAPPA GROUP

BSA MOTORS e-Scooters

BSA मोटार्स आ गया सबके दिलों पे छा गया।

BSA MOTORS की हर एक इलैक्ट्रीक स्कूटर की खरीद पर पाईये "एक साल की बैट्री वारंटी" एवम् "Rs. 4000/- का कैश कार्ड मुफ्त"।

Conditions apply##
*Ex. showroom Price starting from Rs.15,450/- for Smile in Delhi after subsidy & cash card.
*$ Battery Warranty of 12 months / 12000 km's whichever is earlier & applicable.
*# Savings Vary from model to model.

SHAHDARA: Binsar Auto Mobiles, 954 - E, Main 100 Ft Road, Babarpur Extn.Shahdara. Phone: 011-22831100 / 22831400/9911994444/9911450121. **NAJAFGARH: CNS Retail Pvt Ltd,** Plot No. 1, Block – G, Gopal Nagar. Phone: 011 - 28015634 / 28010709/ 09958019000/9212365634. **DWARKA-MAIN PALAM DABRI ROAD: CNS Retail Pvt Ltd,** D - 70/5, Main Palam Dabri Road, Mahavir Enclave. Phone: 011 – 28011702/ 45017150/09818239724/ 9212275634/ 9212170006. **NANGLOI: CNS Retail Pvt Ltd,** Plot No 18, Ram Nagar Colony, Main Najafgarh Road, Nangloi. Phone: 9971734599 / 9213899686. **KRISHNA NAGAR: Agrawal Motors,** A-1/14. Krishna Nagar, Chachi Building Chawk,Near Lal Quarter Market. Phone: 011 – 22452829/09312835117. **KAROL BAGH: Imperial Cycles,** 53/2, Deshbandhu Gupta Road, Karol Bagh. Phone: 011-65461542/ 28722276/25717886/9811453355. **ASHOK NAGAR: New Golden Cycle Store,** 36/13, Ground Floor, Ashok Nagar. Phone: 9810807183. **NOIDA: Agrawal Motors,** B-41 & 42, Sector 16 , Near Mirula's Hotel, Gautam Budh Nagar. Phone: 0120-4249906/ 4232242/9312835117/ 09350906906. **ROHINI: Rocky Autolinks,** F 18/61, Rohini, Sector 8. Phone: 9811032353 (Opening Shortly)

चौथी दुनिया

www.chauthiduniya.com

बिहार झारखंड

दिल्ली, 16 नवंबर–22 नवंबर 2009

रोज़गार मेला

कहावत है, गुड़ दिखाकर ढेला मारना. राज्य सरकार का नियोजन मेला कमोबेश कुछ ऐसा ही था, जहां उज्ज्वल भविष्य का सपना संजोए लाखों युवा अलसुबह यानी पौ फटने से पहले से अपनी उपस्थिति दर्ज़ करा चुके थे. लेकिन, इसे उनकी बदकिस्मती कहें या व्यवस्था का नाकारापन कि नौकरी के नाम पर असंख्य नौजवानों को न सिर्फ़ निराशा हाथ लगी, बल्कि उनके आवेदनपत्रों को भी सहेज कर नहीं रखा गया.

नौकरी देने के नाम पर सरकार ने की नौटंकी

विपक्ष माहौल ख़राब कर रहा है: अवधेश

राज्य के श्रम संसाधन मंत्री अवधेश नारायण सिंह का दावा है कि नियोजन मेला पूरी तरह सफल रहा और एक महीने के अंदर 25 हज़ार लोगों को नौकरी मिल जाएगी. नियोजन मेले में लिए गए कुछ आवेदनपत्र सड़कों पर पड़े मिले. इस संदर्भ में उन्होंने विपक्षी पार्टियों पर माहौल ख़राब करने का आरोप लगाया. उन्होंने कहा कि राज्य में विकास का माहौल विपक्षी पार्टियों को रास नहीं आ रहा है, क्योंकि उन्होंने अपने शासनकाल में कभी इस तरह की पहल नहीं की. हो सकता है कि रद्द किए गए कुछ आवेदनपत्रों को फेंक दिया गया हो. बिहारी बच्चों के साथ किसी क़ीमत पर अन्याय नहीं होने दिया जाएगा. विभागीय सचिव नियोजन से संबंधित हर मामले को देख रहे हैं. अगर आवेदनपत्र फेंके जाने की शिकायत सही पाई गई तो दोषी लोगों के ख़िलाफ़ ज़रूर कार्रवाई की जाएगी. यही नहीं, सरकार ने चौथे चरण में प्रमंडल स्तर पर नियोजन मेला आयोजित करने का निर्णय लिया है. उन्होंने इस आरोप को भी ग़लत बताया कि मेले में बड़ी कंपनियों ने भाग नहीं लिया. श्रम संसाधन मंत्री ने बिहार के विकास के लिए सभी से सहयोग की अपील करते हुए कहा कि नीतीश सरकार हर युवा के सपनों को पूरा करेगी.

सरोज सिंह

बीती 31 अक्टूबर को सूरज की लालिमा पूरी तरह से निकली भी नहीं थी कि आंखों में सुनहरे भविष्य का सपना संजोए लाखों युवाओं की भीड़ पटना की सड़कों पर उमड़ पड़ी. मौक़ा था श्रम संसाधन विभाग द्वारा आयोजित दो दिनों का नियोजन मेला. इस मेले के लिए सरकार ने बड़े-बड़े दावे किए थे, लेकिन सारे खोखले साबित हुए. सरकार के दावों ने बेरोज़गारों की हसरत इस क़दर बढ़ा दी कि अगले दिन रविवार होने के बावजूद हर तरफ़ युवाओं का रेला नज़र आ रहा था. दो दिन में लगभग चार लाख लोगों ने नौकरी के लिए आवेदन किया, लेकिन इनमें से लगभग चार हज़ार युवक ही भाग्यशाली रहे, जिन्हें नियुक्ति पत्र दिए गए. बाक़ी बचे हुए आवेदनकर्ताओं से कहा गया कि उन्हें जल्द ही ख़बर की जाएगी, लेकिन जब कुछ युवाओं को अपने आवेदनपत्र सड़कों पर पड़े मिले तो रोज़गार देने वाली कंपनियों की नीयत पर ही प्रश्नचिन्ह लग गया. सबसे ज़्यादा नियुक्तियां स्पाइनिंग मिल के लिए हुईं, पर वेतन सुनकर युवाओं के होश उड़ गए. 2500 रुपये मासिक पर कंपनियां उन्हें मध्य प्रदेश या फिर दूसरे राज्यों में ले जाना चाहती हैं. हैरत की बात तो यह है कि इन दो दिनों में आईटी, प्रबंधन व्यवसाय, पैरा मेडिकल, दंत चिकित्सा, इंजीनियरिंग और तकनीकी सेक्टरों में कंपनियों को एक भी योग्य उम्मीदवार नहीं मिला.

पूरे तामझाम के साथ सरकार ने लगभग दो सौ निजी कंपनियों को आमंत्रित किया था, जिनमें से लगभग 115 कंपनियों ने नियोजन मेले में भाग लिया. 25 हज़ार नौकरियों के लिए 3,77,061 लोगों ने आवेदन किया. श्रम विभाग के अधिकारियों के अनुसार, इनमें से 4,123 युवकों को नियुक्ति पत्र दिया गया और हज़ारों युवकों को दूसरे राउंड के इंटरव्यू के लिए बुलाया गया है. इसी तरह कई युवकों को बाद में बुलाने का आश्वासन दिया गया है. लेकिन, आवेदनपत्रों को सड़कों पर फेंककर या फिर झूठे वादे करके निजी कंपनियां बिहारी युवाओं का भविष्य किस तरह संवारेंगी, इस सवाल का जवाब तो सरकार ही दे सकती है.

आयकर चौराहे के समीप स्थित नियोजन परिसर में बैठे हरनौत के विमल प्रकाश, महनार के राजीव सिंह, मुंगेर के मनीष कुमार और बांका के रंजय कुमार ने जो कुछ बताया, उससे तो नियोजन मेले के आयोजन पर ही प्रश्नचिन्ह खड़ा हो जाता है. इन युवकों के अनुसार, मेले में एक सिक्योरिटी एजेंसी में नौकरी के लिए आवेदन करने के बाद उन्हें नियोजनालय में आने को कहा गया. उसी समय बहाली की घोषणा करने की बात भी कही गई थी. जब ये लोग वहां पहुंचे तो सिक्योरिटी एजेंसी का कोई भी आदमी वहां नहीं मिला.

नियोजन मेला पूरी तरह फ्लॉप रहा. सरकार ने युवाओं की समस्या को गंभीरता से नहीं लिया. इस मामले में सरकार जल्द से जल्द बेरोज़गारों को नौकरी देने के लिए अपनी नीति की घोषणा करे.

किशोर कुमार मुन्ना, *निर्दलीय विधायक, सोनवर्षा*

सरकार ने नौकरी देने के नाम पर युवाओं को गुमराह करके गंभीर अपराध किया है. सैकड़ों फॉर्म सड़कों पर इधर-उधर पड़े मिले, इसी से युवाओं के प्रति नीतीश सरकार की चिंता का पता चलता है.

रामकृपाल यादव, *राजद के वरिष्ठ नेता*

हद तो यह कि उनके द्वारा जमा किए गए आवेदनपत्र बाहर मैदान व टेंट के अंदर पड़े मिले. दो दिनों तक चले इस मेले में स्पाइनिंग मिल के लिए आठ नियोजक आए थे. उनके पास 8844 युवाओं ने आवेदन किया और उनमें से 3454 लोगों को नौकरी दी गई. लेकिन कम वेतन की वजह से कितने युवक दूसरे राज्यों में नौकरी करने जाएंगे, यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है. इंश्योरेंस व बैंकिंग सेक्टर से 25 नियोजक आए थे, जहां 33,340 युवकों ने आवेदन किया, पर एक की भी नियुक्ति नहीं हो सकी. सेल्स व मार्केटिंग के लिए 66,300 आवेदन जमा हुए, पर केवल 32 युवक ही भाग्यशाली रहे. सिक्योरिटी गार्ड व सुपरवाइजरों की भर्ती के लिए सात नियोजक आए थे. 1,51,650 युवकों ने आवेदन किया, पर केवल 282 लोग ही सफल हो पाए. इसी तरह पैरा मेडिकल व दंत चिकित्सा के लिए 2,060 आवेदन जमा हुए, पर एक भी युवक को नियुक्ति पत्र नहीं मिला.

नियोजन मेले से अधिकांश युवाओं को मिली निराशा को सूबे की विपक्षी पार्टियों ने भी मुद्दा बनाया और नीतीश सरकार पर युवाओं को ठगने और पैसे की बर्बादी का आरोप लगाया.

लोजपा प्रमुख रामविलास पासवान ने कहा कि सरकार युवाओं की भावनाओं से खेलना बंद करे. नियोजन मेले को नाटक बताते हुए उन्होंने कहा कि बेरोज़गारों को पटना बुलाकर उन्हें ख़ाली हाथ वापस भेज दिया गया. राजद के वरिष्ठ नेता रामकृपाल यादव ने कहा कि सरकार ने नौकरी देने के नाम पर युवाओं को गुमराह करके गंभीर अपराध किया है. सैकड़ों फॉर्म सड़कों पर इधर-उधर पड़े मिले, इसी से युवाओं के प्रति नीतीश सरकार की चिंता का पता चलता है. युवा राजद के प्रदेश अध्यक्ष सतीश पासवान ने कहा कि सरकार की अदूरदर्शी नीति के कारण बेरोज़गारों की जेब से दो सौ करोड़ रुपये निकल गए. युवा राकांपा के प्रदेश अध्यक्ष रोहित सिंह ने भी नियोजन मेले को नौटंकी क़रार दिया. सोनवर्षा के निर्दलीय विधायक किशोर कुमार मुन्ना ने कहा कि नियोजन मेला पूरी तरह फ्लॉप रहा. सरकार ने युवाओं की समस्या को गंभीरता से नहीं लिया. इस मामले में सरकार जल्द से जल्द बेरोज़गारों को नौकरी देने के लिए अपनी नीति की घोषणा करे.

सरकार तो दावे करती रहेगी और विरोधी पार्टियां उन्हें झुठलाती रहेंगी, पर सूबे के युवाओं के सपनों के साथ इस तरह खिलवाड़ करने वालों को रोका जाना चाहिए. वरना अगले साल फिर ऐसा ही मेला लगेगा, बेरोज़गार युवाओं की भीड़ नौकरी की आस लिए पटना में जुटेगी, सड़कों पर पड़े मिलेंगे आवेदनपत्र और एक बार फिर चकनाचूर हो जाएगा नौकरी पाने का सपना.

feedback@chauthiduniya.com

भाजपा शुरू से यह मानती रही है कि जब-जब कांग्रेस सत्ता में आई है, महंगाई बढ़ी है. इसलिए महंगाई तो मुद्दा होगी ही, लेकिन सबसे बड़ा मुद्दा भ्रष्टाचार होगा.

बेतिया में रहने वाले लगभग साढ़े चार सौ मारवाड़ी परिवारों के सदस्यों के चेहरे पर अपराधियों का ख़ौफ़ साफ़ देखा जा सकता है. अगला निशाना कौन बनेगा, यह सोचकर हर व्यवसायी भयभीत है.

संकट में जदयू

रणवीर यादव

पूनम यादव

अरविंद मोहन

रेणु देवी

खगड़िया की सियासी दुनिया में अंतर्कलह चरम पर है. लगभग सभी दल अंतर्कलह की चपेट में हैं. कहीं खुलकर तो कहीं पर्दे के पीछे से बग़ावत का खेल चल रहा है. स्थिति यह है कि असंतुष्ट खेमे के लोग अपनी ही पार्टी की नैया डुबोने में लगे हुए हैं. चाहे वह सत्तारूढ़ जदयू हो या फिर भाजपा. सबसे ख़तरनाक स्थिति जदयू की है. यहां चल रही अंतर्कलह पर अगर नज़र डाली जाए तो ऐसा लगेगा कि कहीं आसन्न विधानसभा चुनाव में जदयू की ज़मीन दरक न जाए.

हाल में हुए विधानसभा उपचुनाव में पार्टी की करारी हार हालात को बयां करने के लिए काफी है. उपचुनाव के बाद बदली सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों के कारण सभी पार्टियों को नए सिरे से सोचने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है. सबसे चिंतनीय स्थिति जदयू की है. पार्टी नेताओं में सिर फुटौव्वल की स्थिति बनती जा रही है. इससे लगता है कि स्थिति को संभालने का प्रयास नहीं किया गया तो ज़िले में पार्टी का बेड़ा ग़र्क़ होना लगभग तय है. लोकसभा चुनाव के समय दिनेश चंद्र यादव को पार्टी प्रत्याशी बनाए जाने के बाद ही बग़ावत का झंडा बुलंद होने लगा था. यादव को बाहरी बताकर पार्टी से जुड़े नेताओं ने ही उनके ख़िलाफ़ तलवार भांजनी शुरू कर दी थी. काफी तिकड़म के बाद भी यादव को हराया तो नहीं जा सका. खगड़िया के मतदाताओं ने स्थानीय नेताओं के बजाय मुख्यमंत्री नीतीश को तवज्जो देते हुए यादव के सिर जीत का सेहरा बांध दिया. इसी के बाद अंतर्कलह खुलकर सामने आ गई. जदयू ज़िलाध्यक्ष सोनेलाल मेहता ने पार्टी की उदाकिशुनगंज विधायक एवं सह कृषि मंत्री रेणु सिंह कुशवाहा, खगड़िया विधायक श्रीमती पूनम देवी यादव एवं पूर्व विधायक रणवीर यादव के विरुद्ध पार्टी विरोधी कार्य करने का आरोप लगाकर सनसनी पैदा कर दी थी. मेहता का कहना था कि इन नेताओं ने पार्टी प्रत्याशी दिनेश यादव के बजाय कांग्रेस प्रत्याशी के पक्ष में प्रचार किया. उन्होंने जदयू के प्रदेश अध्यक्ष राजीव रंजन सिंह उर्फ ललन सिंह को भी पत्र लिखकर इन नेताओं को निष्कासित करने की मांग तक कर डाली थी. लेकिन आरोपियों के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं हुई. रेणु सिंह कुशवाहा ने खुद पर लगाए गए आरोप को सिरे से ख़ारिज़ करते हुए कहा कि उन्होंने सूबे के विभिन्न इलाकों में पार्टी के पक्ष में प्रचार किया. खगड़िया विधायक पूनम यादव के पति एवं पूर्व विधायक रणवीर यादव ने भी अपना और पत्नी का खुलकर बचाव किया. उन्होंने कहा कि पूनम बीमार थीं और डॉक्टर द्वारा उन्हें आराम करने की सलाह दी गई थी, इसलिए वह पार्टी के प्रचार में खुलकर हिस्सा नहीं ले सकीं. उनका कांग्रेस प्रत्याशी से कोई लेना-देना नहीं रहा.

यह अध्याय अभी समाप्त नहीं हुआ था कि सांगठनिक चुनाव के समय एक बार फिर सिर फुटौव्वल की नौबत आ गई. वैसे ज़िलाध्यक्ष का चुनाव नज़दीक आते-आते माहौल ठंडा हो गया, लेकिन अब एक बार फिर विवाद शुरू हो चुका है. आलम यह है कि एक पखवाड़े पूर्व जदयू ज़िलाध्यक्ष सोनेलाल मेहता, प्रदेश महासचिव अरुण यादव, चौथम प्रखंड अध्यक्ष सुनील कुमार एवं जदयू प्रवक्ता अरविंद मोहन के बीच मारपीट होते-होते बची. अगर लोगों ने बीच में आकर मामला संभाला नहीं होता तो कचहरी मार्ग युद्ध स्थल में तब्दील हो जाता.

मालूम हो कि खगड़िया में पार्टी पांच खेमे में बंटी हुई है. एक खेमे का नेतृत्व पूर्व विधायक रणवीर यादव और दूसरे खेमे का नेतृत्व पूर्व मुखिया अशोक सिंह कर रहे हैं. इसी तरह पार्टी प्रवक्ता अरविंद मोहन, कृषि मंत्री रेणु सिंह कुशवाहा और ज़िलाध्यक्ष सोनेलाल मेहता भी अलग-अलग गुटों की कमान संभाल रहे हैं. इस तरह की स्थितियों के कारण यह कहना शायद अतिशयोक्ति नहीं होगा कि खगड़िया में जदयू की ज़मीन कहीं दरक न जाए!

राजेश सिन्हा
feedback@chauthidunya.com

झारखंड पर भ्रष्टाचारियों का क़ब्ज़ा : अर्जुन मुंडा

मधु कोड़ा के शासन के कच्चे चिट्ठे पर मैं विधानसभा में बहस चाहता था, लेकिन तत्कालीन स्पीकर ने इसकी अनुमति नहीं दी. अब लोगों को मालूम चल गया है कि कोड़ा एंड कंपनी ने यहां क्या गुल खिलाए हैं. अगर सदन में ही यह बात सामने आ जाती कि विनोद सिन्हा कौन हैं और उसका कोड़ा से क्या संबंध है तो राज्य की ग़रीब जनता का पैसा विदेश नहीं पहुंचता.

फोटो–प्रभात पाण्डेय

पूर्व मुख्यमंत्री अर्जुन मुंडा झारखंड की राजनीति के अहम किरदार रहे हैं. राजनीतिक दलों की प्रतिष्ठा से जुड़े आगामी विधानसभा चुनाव में उन्होंने भाजपा की सरकार बनवाने के लिए अपनी पूरी ताक़त झोंक दी है. उनका मानना है कि सरकार की अस्थिरता व भ्रष्टाचार से राज्य की जनता बेहद ख़फ़ा है और इससे निजात पाने के लिए वह इस चुनाव में निश्चित तौर पर भाजपा का साथ देगी. मुंडा प्रदेश भाजपा में किसी भी तरह की गुटबाज़ी को सिरे से ख़ारिज़ करते हैं. वह कहते हैं कि दल की एकता ही हमारी असली ताक़त है और इस चुनाव में यह साबित भी हो रही है. उनका मानना है कि राज्य में सुख व शांति लाने के लिए भाजपा ही एकमात्र विकल्प है और जनता इस बात को अच्छी तरह समझ रही है. पेश हैं बातचीत के मुख्य अंश:

झारखंड और भाजपा दोनों के लिए यह चुनाव बड़ा अहम है. आप किन मुद्दों के साथ चुनाव में उतरेंगे?

भाजपा शुरू से यह मानती रही है कि जब-जब कांग्रेस सत्ता में आई है, महंगाई बढ़ी है. इसलिए महंगाई तो मुद्दा होगी ही, लेकिन सबसे बड़ा मुद्दा भ्रष्टाचार होगा. स्थायी सरकार देने के अलावा विस्थापन, पलायन और बेरोज़गारी आदि समस्याएं पार्टी की केंद्र बिंदु रहेंगी. पंचायत चुनाव कराना भी पार्टी की पहली प्राथमिकता होगी. कन्यादान योजना पर फिर से काम होगा. एनडीए ने कई महत्वाकांक्षी व कल्याणकारी योजनाएं शुरू की थीं, लेकिन उन्हें बंद कर दिया गया है. बंद योजनाएं जनहित में फिर से लागू की जाएंगी.

मुख्यमंत्री पद की दावेदारी से पीछे हटने की कोई ख़ास वजह? ऐसा कहा जा रहा है कि आपने आलाकमान के आदेश पर यह निर्णय लिया है?

देखिए, अभी मैं संसद की राजनीति से ही ख़ुश हूं. मैंने पहले भी कहा था कि अभी हमें बहुत कुछ सीखना है. रही बात आलाकमान के आदेश की, तो इस बात में कोई सच्चाई नहीं है. दरअसल हमारे प्रतिद्वंद्वियों को इसमें भी राजनीति नज़र आ रही है. यह भी कहा गया कि राज्य की राजनीति से दूर करने के लिए मुझ पर लोकसभा का चुनाव लड़ने का दबाव था, ताकि मैं मुख्यमंत्री पद का दावेदार न बन सकूं. यह पूरी तरह बकवास है और मीडिया की उपज है. पार्टी ने इस बार सामूहिक नेतृत्व में चुनाव लड़ने का फ़ैसला लिया है. ज़ाहिर है कि मुख्यमंत्री पद का दावेदार कौन होगा, यह चुनाव के बाद तय होगा, न कि पहले.

भ्रष्टाचार को लेकर देश भर में झारखंड की बदनामी हुई है. आप क्या कहेंगे?

मधु कोड़ा के शासन के कच्चे चिट्ठे पर मैं विधानसभा में बहस चाहता था, लेकिन तत्कालीन स्पीकर ने इसकी अनुमति नहीं दी. अब लोगों को मालूम चल गया है कि कोड़ा एंड कंपनी ने यहां क्या गुल खिलाए हैं. अगर सदन में ही यह बात सामने आ जाती कि विनोद सिन्हा कौन है और उसका कोड़ा से क्या संबंध है तो राज्य की ग़रीब जनता का पैसा विदेश नहीं पहुंचता. मेरे मुख्यमंत्रित्वकाल में भ्रष्टाचारियों पर नकेल कसने का भरसक प्रयास किया गया, लेकिन भ्रष्ट तत्वों ने झारखंड को एक तरह से अपने क़ब्ज़े में कर लिया. कोड़ा देश के किसी भी राज्य के ऐसे पहले मुख्यमंत्री साबित हुए, जिनके ख़िलाफ़ आयकर, निगरानी और प्रवर्तन निदेशालय के एक साथ छापे पड़े तथा अब इंटरपोल की भी मदद ली जा रही है. इस राज्य का दुर्भाग्य देखिए कि ऐसे राजनेता को जनता ने सांसद भी चुन लिया.

राजभवन को भाजपा ने शुरू से ही निशाने पर रखा. इसके पीछे क्या रणनीति थी?

पार्टी यह मानती है कि राजभवन भी भ्रष्टाचारियों के क़ब्ज़े में आ गया था. इसका ख़ुलासा रजी साहब के जाते ही हो गया. राजभवन ही सत्ता के केंद्र में था. जो काम यूपीए के शासन में होता था, वही काम राजभवन से होने लगा. झारखंड शायद देश का ऐसा पहला राज्य है, जहां राजभवन पर भी भ्रष्टाचार के छींटे पड़े. यूपीए सरकार ने यहां की स्थिति अराजक बना दी थी. किसी ने सोचा भी नहीं होगा कि राजभवन के अधिकारी भ्रष्ट निकलेंगे और उनके ख़िलाफ़ आयकर की छापामारी होगी. इस मामले में कांग्रेस की नीयत साफ़ नहीं है. भाजपा तो पूर्व राज्यपाल सैयद सिब्ते रजी से भी पूछताछ की मांग करती है. ऐसा करके कांग्रेस अपने पापों को धो सकती है.

चुनाव में भाजपा के बेहतर प्रदर्शन के प्रति आप कितने आश्वस्त हैं?

यूपीए के शासन को जनता देख चुकी है. अब हमारी बारी है. पार्टी इसका ट्रेलर लोकसभा चुनाव में दिखा चुकी है. आठ सीटों पर हमारी वापसी हुई है. इस बार हम सरकार बनाने की स्थिति में होंगे. एनडीए ही मज़बूत और टिकाऊ सरकार देने में सक्षम है. निर्दलियों के लिए कहीं कोई उम्मीद नहीं बचेगी. जनसमर्थन भाजपा के पक्ष में है. एनडीए ही झारखंड को बचा सकती है. यह पैग़ाम पार्टी के अनुशासित और समर्पित कार्यकर्ताओं के बूते जन-जन तक पहुंचाने की कोशिश की जा रही है. राज्य को लूटने वालों को दोबारा विधानसभा नहीं पहुंचने देने के लिए वोटरों में भी जागरूकता लानी होगी. इस दिशा में भी पार्टी की पैनी निगाह है.

तीन राज्यों में कांग्रेस को मिली जीत का यहां कितना असर पड़ेगा?

झारखंड में इसका कोई असर नहीं पड़ेगा. ऐसा कहकर सिर्फ़ माहौल बनाने की कोशिश की जा रही है. कांग्रेस अपने पक्ष में लहर बताकर चुनाव में इसे भुनाने का प्रयास करेगी. इसके लिए मीडिया के कुछ लोगों को भी लगाया गया है, लेकिन इससे कुछ भी हासिल होने वाला नहीं है. सरकार में भाजपा की वापसी तय है. कांग्रेस ने यहां जिस तरह से कोड़ा को समर्थन देकर राज्य का ख़ज़ाना लूटने में हिस्सेदारी निभाई है, यह जगज़ाहिर है.

हिंसामुक्त चुनाव कराने के प्रशासनिक दावों के संबंध में आप क्या कहेंगे?

उग्रवाद प्रभावित इस सूबे में शांतिपूर्ण चुनाव कराना शासन के लिए आसान नहीं होगा. कई माओवादी भी इस बार चुनाव में उतरने की तैयारी में हैं. चुनाव के दौरान औद्योगिक और ग्रामीण इलाक़ों में माओवादियों के साथ टकराव की आशंका प्रबल है. मतदान की पूरी प्रक्रिया पर इसका असर पड़ सकता है. वोट प्रतिशत कई क्षेत्रों में घट सकता है. मतदाताओं को डराया-धमकाया जा सकता है. इसलिए चुनाव आयोग और प्रशासन दोनों को काफी मुस्तैदी से सारे इंतज़ाम करने होंगे, ताकि नक्सलियों के नापाक मंसूबे कामयाब न होने पाएं.

संसद में ओजस्वी संबोधन से आपने राष्ट्रीय राजनीतिक पटल पर बहुत जल्द ही अपनी अलग पहचान बना ली. यह कैसे संभव हुआ?

मुख्यमंत्री बनने के बाद राष्ट्रीय स्तर के नेताओं से मिलना-जुलना होता रहता था. निश्चित रूप से उनके व्यक्तित्व का मुझ पर प्रभाव पड़ा. वैसे अभी मुझे बहुत कुछ सीखना है. सीखने के लिए तो पूरी ज़िंदगी भी कम पड़ जाती है. मैंने संसद में झारखंड की पीड़ा को अभिव्यक्ति दी. अपने राजनीतिक जीवन की शुरुआत से ही जनहित से जुड़े मुद्दों को मैंने काफी क़रीब से देखा-समझा है. जनसमस्याओं को लेकर हमने काफी संघर्ष किया है. जनता ने जब संसद में जाने का मुझे अवसर दिया, तब मन की पीड़ा स्वतः ही शब्दों में तब्दील हो गई. मैं ख़ुशक़िस्मत हूं कि एक आदिवासी नेता को अपनी बात कहने का भरपूर मौक़ा दिया गया. इससे पूर्व किसी आदिवासी नेता ने इसका फ़ायदा नहीं उठाया.

सरोज सिंह
feedback@chauthidunya.com

अंजनी केसान हत्याकांड

दहशत में मारवाड़ी समुदाय

मनोज कुमार राव

बीती पांच नवंबर को बेतिया में एक और व्यापारी अपराधियों की गोली का शिकार हो गया. अधेड़ व्यवसायी अंजनी केसान को अपराधियों ने गुरुवार की शाम उस समय मौत के घाट उतार दिया, जब वह छोटा रमना स्थित अपनी दुकान से घर लौट रहे थे. गंभीर रूप से घायल अंजनी को तुरंत सदर अस्पताल ले जाया गया, जहां डॉक्टरों ने उन्हें मृत घोषित कर दिया. ख़बर मिलते ही व्यापारी वर्ग और जनसामान्य में आक्रोश छा गया. बेतिया में तोड़फोड़ व आगजनी शुरू हो गई. पुलिस-प्रशासन को एक बार फिर उनके गुस्से का सामना करना पड़ा.

बेतिया में रहने वाले लगभग साढ़े चार सौ मारवाड़ी परिवारों के सदस्यों के चेहरे पर अपराधियों का ख़ौफ़ साफ़ देखा जा सकता है. अगला निशाना कौन बनेगा, यही सोचकर हर व्यवसायी भयभीत है. ख़बर पाकर मौक़े पर पहुंचे एसपी अमृत राज, एसडीपीओ सुशांत कुमार एवं नगर थाना प्रभारी संजय झा ने आक्रोशित लोगों को समझाया. उन्होंने 14 नवंबर तक दोषियों की गिरफ़्तारी का आश्वासन भी दिया. व्यापारियों ने छोटा रमना में पुलिस चौकी की स्थापना, नाइट गार्ड व सोलर लाइट की व्यवस्था और शहर के आवागमन गेटों पर पुलिस तैनात करने की मांग की है.

कुछ साल पहले शांति नगर निवासी शाही बंधुओं को अपराधियों ने दिनदहाड़े मौत के घाट उतार दिया था. इसी तरह तीन लालटेन चौक स्थित अभय किराना भंडार के मालिक के पुत्र नचिकेता वरधान की हत्या दुकान में घुसकर कर दी गई थी. हार्डवेयर व्यवसायी श्याम सिलसिलेवाल को भी अपराधियों ने सरेशाम मार डाला था. मशहूर व्यवसायी रवि झुनझुनवाला की हत्या भी कुछ इसी तरह की गई थी. इस बार अपराधियों का निशाना बने अंजनी केसान. चंपारण के आर्थिक तंत्र की रीढ़ माने जाने वाले उक्त व्यवसायी आज करोड़ों-अरबों रुपये की लागत से खड़े अपने व्यवसाय के ज़रिए न केवल सूबे की अर्थ व्यवस्था में ख़ासा योगदान कर रहे हैं, बल्कि सरकार को बतौर टैक्स अपनी गाढ़ी कमाई का एक बड़ा हिस्सा भी दे रहे हैं. लेकिन, पलक झपकते इनमें से कब किसकी हत्या हो जाए, यह कहना मुश्किल है. अंजनी केसान की हत्या के विरोध में एक जुलूस भी निकाला गया, जिसमें छोटा रमना व्यवसायी संघ के अध्यक्ष सुरेश केसान, सचिव आनंद कुमार, महेश कजारिया, मनोज प्रसाद, आलोक व उमेश कुमार, मीना बाज़ार व्यवसायी संघ के मनोज चौधरी, प्रदीप चौधरी व मनोज टेकरीवाल, लाल बाज़ार व्यवसायी संघ के सागर पोखरा तथा तीन लालटेन व्यवसायी संघ के सदस्यों ने हिस्सा लिया. इनमें से कई ने सूरत, जयपुर, अहमदाबाद, कानपुर व दिल्ली पलायन कर जाने की योजना भी बना ली है. जनता सिनेमा हॉल के मालिक एवं व्यवसायी उत्तम मोटानी ने बताया कि व्यापारी-मारवाड़ी समुदाय की सुरक्षा के लिए पश्चिमी चंपारण में सुरक्षा व्यवस्था से जुड़ी सभी एजेंसियों को क़दम से क़दम मिलाकर चलना चाहिए, अन्यथा वह दिन दूर नहीं है, जब यह समुदाय पलायन को मजबूर हो जाएगा. व्यवसायी जगदीश केसान ने कहा कि बेतिया में जो पुलिस गश्ती होती है, उसकी निगाहें अपराधियों के बजाय साठगांठ और वसूली पर होती है. कई व्यापारियों ने पूर्व एसपी अनिल किशोर यादव और बच्चू सिंह मीणा की सराहना करते हुए बताया कि उनके कार्यकाल में हालात क़ाबू में थे. वहीं दुर्गा मइया के नाम से मशहूर एसपी के एस अनुपम, जिनके कार्यकाल में दस्यु सरगना भागड़ यादव ने आत्मसमर्पण किया था, को भी लोग याद करते हैं. एसपी अमृत राज ने आश्वासन दिया कि अपराधी शीघ्र ही सलाखों के पीछे होंगे.

feedback@chauthidunya.com

चुनाव में चलेंगी गोलियां!

लोकतंत्र के महापर्व को लेकर झारखंड की जनता और राजनीतिक दलों में जहां उत्साह की लहर है, वहीं नक्सलियों द्वारा चुनाव के दौरान ख़लल डालने की आशंका भी पिछले चुनावों की अपेक्षा कहीं ज़्यादा है. पड़ोसी राज्य पश्चिमी बंगाल और बिहार की घटनाओं से इस आशंका को काफी बल मिल रहा है. कई नक्सली नेताओं की चुनाव में प्रत्यक्ष भागीदारी के कारण भी ख़ूनख़राबे की आशंका बढ़ गई है. पांच चरणों में होने वाला चुनाव कहीं रक्तरंजित न हो, इसके लिए चुनाव आयोग के साथ पुलिस प्रशासन भी चाक चौबंद इंतज़ाम करने में जुटा है.

सूबे के 22 ज़िले उग्रवाद प्रभावित हैं. इन ज़िलों के कुछ प्रखंड अति संवेदनशील चिन्हित किए गए हैं. उग्रवाद प्रभावित क्षेत्रों में चुनाव के दौरान हिंसक वारदातों और बूथ लूटने की घटनाएं घटती रही हैं. इतना ही नहीं, उग्रवादियों के फ़रमान से मतदाता प्रत्याशियों की जीत-हार तय करते हैं. कई राजनेता उग्रवादियों के समर्थन से ही विधानसभा पहुंचने में सफल हुए हैं. हालांकि ऐसे विधायक इस बात से इनकार करते हैं, लेकिन हक़ीक़त यही है कि क़रीब दर्जन भर विधायकों का भाग्य नक्सलियों के रहमोकरम पर टिका है. कई विधायकों की पृष्ठभूमि उग्रवाद से जुड़ी है. वैसे प्रत्याशियों में खलबली मची है, जो पूर्व में उग्रवादियों की सहायता से विधानसभा पहुंचे हैं, क्योंकि इस बार उग्रवादी स्वयं चुनाव लड़कर विधानसभा में अपनी उपस्थिति दर्ज़ करना चाहते हैं. इसके लिए वे काफी उत्सुक हैं. राज्य के डालटनगंज, गढ़वा, लातेहार, हुसैनाबाद, छत्तरपुर, भवनाथपुर, विश्रामपुर, पांकी, मनिका, चतरा, सिमरिया, हंटरगंज, प्रतापपुर, हज़ारीबाग, बड़कागांव, बरकट्ठा, मांडू, लोहरदगा, गुमला, सिमडेगा, सिसई, रांची, तमाड़, खूंटी, तोरपा, जमशेदपुर, ईचागढ़, सरायकेला-खरसांवा, पोटका और घाटशिला आदि विधानसभा क्षेत्रों में नक्सली संगठन चुनाव को बड़े पैमाने पर प्रभावित कर सकते हैं. गृह मंत्रालय एवं ख़ुफ़िया विभाग की रिपोर्ट के मुताबिक़, 81 विधानसभा क्षेत्रों में से 54 नक्सल प्रभावित हैं. उग्रवादियों की हिंसक गतिविधियों को देखते हुए ही इस बार चुनाव आयोग ने पांच चरणों में चुनाव कराने का निर्णय लिया है.

नक्सलियों को कामयाब नहीं होने देंगे : डीजीपी

राज्य पुलिस मुख्यालय में बग़ैर गतिरोध के चुनाव संपन्न कराने की कवायद शुरू हो गई है. पुलिस अधिकारियों की मैराथन बैठक हो रही है. ख़ासकर ग्रामीण इलाक़ों के थानेदारों व डीएसपी स्तर के अधिकारियों को विशेष सतर्कता बरतने के निर्देश दिए गए हैं. संवेदनशील एवं अति संवेदनशील बूथों पर पर्याप्त सुरक्षाबल तैनात करने के लिए पुलिस महकमे में विचार-विमर्श जारी है. डीजीपी डी डी राम पुलिस अधीक्षकों के साथ बैठकें कर विधानसभा वार बूथों के हालात का जायज़ा ले रहे हैं. बक़ौल डीजीपी, विधानसभा चुनाव के दौरान उग्रवादियों की गतिविधियों पर हमारी पैनी नज़र होगी. ख़ुफ़िया तंत्र पूरी सक्रियता के साथ अपने काम को बख़ूबी अंजाम देगा. नक्सलियों के नापाक मंसूबों को ध्वस्त करने के लिए ठोस रणनीति के तहत कार्रवाई की जाएगी. केंद्र द्वारा 40 हज़ार अर्द्धसैनिक बल देने की स्वीकृति मिल चुकी है. इसके अलावा राज्य पुलिस बल भी मोर्चा संभालेगा. उन्होंने कहा कि पांच चरणों में चुनाव होने से पुलिस को काफी सहूलियत होगी. सुरक्षाबलों की प्रतिनियुक्ति चरणबद्ध तरीक़े से की जाएगी.

चुनावी दंगल में कई नक्सली नेताओं के कूदने से भी सरकार की सरदर्दी बढ़ गई है. दरअसल पलामू से माओवादी नेता कामेश्वर बैठा के जीतने के बाद से ही कई उग्रवादी गुपचुप तरीक़े से चुनाव लड़ने की रणनीति बनाने में जुट गए हैं. सूत्रों का यह भी कहना है कि कई उग्रवादी चुनाव लड़ने के लिए आत्मसमर्पण करने के मूड में हैं, ताकि जेल में रहकर चुनाव लड़ा जा सके. इसके अलावा कुछ माओवादी नेताओं के रिश्तेदार भी इस चुनाव में अपना भाग्य आज़मा रहे हैं. इसी का परिणाम है कि अब तक दस माओवादियों को संगठन से बाहर कर दिया गया है. निष्कासित युगल पाल उर्फ़ मदन बिहार झारखंड उत्तरी छत्तीसगढ़ स्पेशल एरिया कमेटी के पूर्व सदस्य रहे हैं. उनके साथ निष्कासित नक्सली सतीश उर्फ़ विनय उर्फ़ रितेश, अंबिकापुर जेल में बंद राम इकबाल पाल, हंसराज राम, दिलीप, गुड्डू इरांव, भूषण यादव और बसंत यादव आदि पर चुनाव में भागीदारी का आरोप लगाया गया है.

नवलेश नवल
feedback@chauthidunya.com

मस्तिष्क ज्वर की चपेट में मगध

दक्षिण बिहार का एकमात्र अनुग्रह नारायण मगध मेडिकल कॉलेज अस्पताल इन दिनों मस्तिष्क ज्वर (दिमाग़ी बुख़ार) से पीड़ित बच्चों की चीख़-पुकार से गूंज रहा है. पिछले एक महीने में 35 बच्चे काल के गाल में समा चुके हैं. जबकि दो दर्जन से अधिक का इलाज अस्पताल के विशेष वार्ड में चल रहा है. गत तीन वर्षों में इस बीमारी से मरने वाले बच्चों की संख्या 133 हो चुकी है और आज भी सैकड़ों इसकी चपेट में हैं.

मालूम हो कि कर्नाटक में बिजापुर एवं धारवार पश्चिम, पश्चिमी बंगाल में हावड़ा एवं हुगली, आंध्र प्रदेश में अदिलाबाद, नालोर एवं कृष्णा और बिहार में गया आदि ज़िले मस्तिष्क ज्वर के मामले में हाई रिस्क क्षेत्र माने गए हैं. बावजूद इसके शासन और प्रशासन सचेत नहीं हुआ और स्थिति दिन-प्रतिदिन बिगड़ती ही जा रही है, मलेरिया के मामले में गया ज़िले का शेरघाटी अनुमंडल पहले से ही हाई रिस्क ज़ोन है. वायरल इंफेक्शन से फैलने वाली इस बीमारी की रोकथाम के लिए डीडीटी और मिलाथियान के छिड़काव के साथ-साथ एक से पंद्रह वर्ष के बच्चों का टीकाकरण बहुत ज़रूरी है. लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों की कौन कहे, शहरों में भी पिछले कई वर्षों से मच्छर नाशक दवा का छिड़काव नहीं किया जा सका है. अनुग्रह नारायण मगध मेडिकल कॉलेज अस्पताल की अधीक्षक डॉ. शिव कुमारी प्रसाद कहती हैं कि मस्तिष्क ज्वर से पीड़ित मरीज़ों के लिए सभी तरह की सुविधाएं उनके यहां उपलब्ध हैं. इसके लिए अलग वार्ड बनाया गया है और पर्याप्त मात्रा में दवाओं की भी व्यवस्था की गई है.

गया ज़िले में मस्तिष्क ज्वर ने तीन वर्ष पूर्व जुलाई 2007 में अपना रंग दिखाना शुरू किया. उस वर्ष दिसंबर तक मेडिकल कॉलेज में 199 मरीज़ आए, जिनमें से 49 की मौत हो गई. 2008 में 203 मरीज़ भर्ती हुए, उनमें से भी 49 लोग ज़िंदगी की बाज़ी हार गए. इस वर्ष अगस्त से लेकर अब तक 120 मरीज़ आ चुके हैं, जिनमें से 35 की मौत हो चुकी है. गत दिनों यूनीसेफ की टीम के डिप्टी स्टेट कोऑर्डिनेटर डॉ. प्रधान एवं डॉ. आफताब आलम ने मेडिकल कॉलेज आकर पीड़ित मरीज़ों को देखा और स्थिति को गंभीर बताया. राज्य स्वास्थ्य समिति के संयुक्त निदेशक डॉ. रवींद्र नाथ पांडेय एवं जोनल मलेरिया पदाधिकारी डॉ. एनपी त्रिपाठी ने मेडिकल कॉलेज में जाकर रोगियों का हालचाल पूछा और चिकित्सा व्यवस्था का जायज़ा लिया. मगध प्रमंडल के आयुक्त डॉ. राणा अवधेश एवं ज़िला पदाधिकारी संजय कुमार सिंह ने भी वहां जाकर मस्तिष्क ज्वर के मरीज़ों को बेहतर चिकित्सा सुविधाएं देने का निर्देश दिया. गया ज़िले के डुमरिया, मोहनपुर, डोभी, इमामगंज, खिजरसराय, अनरी, गुरुआ, बोधगया, चंदौती, टनकुप्पा, बाराचट्टी, बेलागंज, परैया, मानपुर एवं औरंगाबाद ज़िले के देव, रफीगंज, गोह, कुटुंबा और जहानाबाद ज़िले के मखदूमपुर तथा नवादा ज़िले के रजौली, कौआकोल के अलावा सीमावर्ती झारखंड के चतरा और पलामू ज़िले से भी मस्तिष्क ज्वर के मरीज़ यहां आ रहे हैं.

राज्य सरकार ने गया ज़िले में मस्तिष्क ज्वर की रोकथाम के लिए 77,85,596 रुपये का आवंटन किया है. इस राशि से एक से पंद्रह वर्ष तक के बच्चों का टीकाकरण किया जाएगा.

Postal Regn. No. DL/ND-11/6139/2009-11, RNI No. 45843/86

चौथी दुनिया

दिल्ली, 16 नवंबर–22 नवंबर 2009

एपीएल और बीपीएल सूची में जिनका नाम एक जगह है, वे लोग सही लाभ ले रहे हैं, जबकि दूसरी जगह का लाभ बिचौलिए उठा रहे हैं.

एपीएल और बीपीएल सूची में घपलेबाज़ी

बॉलीवुड की फिल्मों में आप अभिनेता और अभिनेत्रियों के बदलते रिश्ते देखकर हैरान रह जाते हैं, लेकिन वह तो अभिनय की दुनिया है. आरा नगर निगम ने तो इससे बड़ा कारनामा कर दिखाया है. उसके द्वारा तैयार की गई एपीएल और बीपीएल की सूची में बेटे का नाम पिता की जगह और पति का नाम पत्नी की जगह दर्ज़ हो गया है. यह हाल है निगम के मेयर के वार्ड का.

सरकार ने ग़रीबी रेखा से नीचे जीवन बसर कर रहे लोगों के लिए कई योजनाएं शुरू कर रखी हैं. एपीएल, बीपीएल और अंत्योदय योजना उसी की एक कड़ी है. वर्ष 2006 में सरकार द्वारा पहली बार एपीएल एवं बीपीएल सूची बनाने के लिए सर्वे कराया गया, ताकि ग़रीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे लोगों को चिह्नित कर सरकार की योजनाओं से उन्हें लाभांवित कराया जा सके. यह सर्वे नेहरु युवा संस्थान व भोर नामक एनजीओ के माध्यम से कराया गया. इसके लिए 10 रुपए प्रति व्यक्ति के हिसाब से भुगतान किया गया. सर्वे करने वाली इन संस्थाओं के दफ़्तरों का कोई अता-पता नहीं है. नगर निगम द्वारा दी गई जानकारी के मुताबिक़ जब पता किया गया तो नेहरु युवा संस्थान का कोई दफ़्तर न तो चंदवा में मिला और न ही शहर के किसी अन्य हिस्से में. एपीएल एवं बीपीएल के फ़र्ज़ी कूपनों के ज़रिए अनाज व केरोसिन उठाकर लाखों का वारा-न्यारा किया जा रहा है. वार्ड नंबर 27 निवासी डेजी खां बताते हैं कि पूर्व में एपीएल व बीपीएल की श्रेणी में शामिल लोगों के लिए भोर नामक संस्था ने सर्वेक्षण किया था, जिसमें वार्ड नं. 27 रौजा से 1543 लोग चिह्नित किए गए थे. सूची के नगर निगम तक पहुंचते ही यह संख्या बढ़कर 2454 हो गई. एसडीओ ऑफिस आते-आते सूची में 3211 लोगों के नाम दर्ज़ हो चुके थे. दिलचस्प पहलू यह कि सूची देखकर ही फ़र्ज़ीवाड़े का रहस्योद्घाटन हुआ है. उदाहरण के तौर पर वार्ड नंबर 27 की बीपीएल सूची में क्रम संख्या 83 पर ख़लील मियां इलाही मियां के अब्बू दर्ज़ हैं, जबकि क्रम संख्या 84 पर वही ख़लील मियां इलाही मियां के बेटे बन गए हैं. क्रम संख्या 75 पर कुरैशा ख़ातून के शौहर सरफुद्दीन हैं, जबकि क्रम संख्या 133 पर सरफुद्दीन कुरैशा ख़ातून की बेग़म बन गए हैं. क्रम संख्या 659 पर मजहर अंसारी का नाम बीपीएल सूची में है, लेकिन एपीएल के क्रम संख्या 1107 में भी उनका नाम है. इसमें जिन लोगों के नाम मिले हैं, उन सभी की होल्डिंग संख्या भी एक है. सूची में जिनका नाम एक जगह है, वे लोग सही लाभ ले रहे हैं, जबकि दूसरी जगह का लाभ बिचौलिए उठा रहे हैं.

भाजपा के ज़िला सचिव एवं वार्ड नंबर 12 के पार्षद दिनेश कुमार मुन्ना बताते हैं कि मदन जी का हाता, हरि जी का हाता, महाजन टोली और शीतल टोला ऐसे मोहल्ले हैं, जहां नौकरीपेशा और व्यवसायी वर्ग के लोग रहते हैं, लेकिन यहां के कुछ निवासियों का नाम बीपीएल और अंत्योदय में भी शामिल है. इसके अंतर्गत शहरी क्षेत्रों में 65 रुपए में 25 किलो अनाज मिलता है. वितरकों द्वारा सरकार द्वारा निर्धारित मूल्य 65 रुपए के बजाय 75 से लेकर 80 रुपए भाड़ा ख़र्च के नाम पर वसूल किए जा रहे हैं. हद तो यह है कि अपना दल के अध्यक्ष अवध बिहारी मेहता का नाम भी बीपीएल की सूची में शामिल है. उधर बड़हरा प्रखंड प्रमुख श्रीमती अनिता कुमारी ने आरोप लगाया है कि मुखिया व ग्राम सेवक की मिलीभगत से घर बैठे ही सूची तैयार कर ली गई और वास्तविक लोगों का नाम बीपीएल सूची से गायब हो गया, जबकि रसूख़ वाले कई लोगों के नाम बीपीएल व अंत्योदय में शामिल कर लिया गया. नगर आयुक्त परमेश्वर राम ने बताया कि सर्वेक्षण के बाद कई लोगों ने आवेदन किया, जिसके आधार पर सूची में नाम जोड़े गए. साथ ही उन्होंने सूची में इस फ़र्ज़ीवाड़े की जांच और इसका नगर निगम व एसडीओ ऑफिस की सूची से मिलान कराने का भी आश्वासन दिया. संघर्षशील विकास समिति के अध्यक्ष फ़ैज़ान अहमद खां ने आरोप लगाया कि 2006 में कराए गए सर्वे की सूची ज़िला प्रशासन ने गायब कर दी और पुन: 2007 में सर्वे कराया. इसी वजह से 2006 की बीपीएल सूची में शामिल लोगों का नाम 2007 की सूची से ग़ायब है. इस संदर्भ में ज़िलाधिकारी का कहना है कि 2006 की सर्वे सूची सरकार के दिशा-निर्देश पर ही बदली गई.

अश्विनी कुमार
feedback@chauthiduniya.com

देजा की नई पारी

लगता है भोजपुरी फिल्मों का जादू साउथ के अभिनेता और अभिनेत्रियों पर सिर चढ़ कर बोल रहा है, तभी तो एक के बाद एक साउथ की अभिनेत्रियां भोजपुरी में अपनी नई पारी शुरू करने के लिए बेचैन रहती हैं. ग़ौरतलब है कि नग़मा ने साउथ और बॉलीवुड में हाथ आज़माने के बाद भोजपुरी फिल्मों की तरफ़ रूख़ किया था. हाल में उन्हीं के नक़्शेक़दम पर चलते हुए देजाश्री ने भी भोजपुरी फिल्मों में दस्तक दी है. तमिल फिल्मों में अपने जलवे बिखेरने के बाद उन्होंने भोजपुरी की तरफ़ रूख़ किया है. वह कहती हैं कि भोजपुरी फिल्मों में काम करने का अपना अलग मजा है. वैसे उन्होंने तमिल सिनेमा में कुछ आइटम सांग्स के अलावा *सोली अडीप्पन, अरीवा* और *थीरू रंगा* जैसी फिल्मों में काम किया है, लेकिन अब उन्हें भोजपुरिया सिनेमा ज़्यादा रास आ रहा है. सूत्रों के मुताबिक़ देजा ने बड़े बैनर की कई भोजपुरी फिल्मों की डील साइन की है, लेकिन इसके बारे में कुछ भी बोलने से वह कतरा रही हैं. मतलब यह कि चोरी-छिपे अपनी फिल्मों के ज़रिए वह बड़ा धमाका करने की तैयारी में हैं. वह कहती हैं कि उनके जलवे देखने के लिए अभी थोड़ा और सब्र करना पड़ेगा. और हां, अपने जलवों में नया रंग भरने के लिए के लिए उन्होंने कथक भी सीखा है, तो फिर दिल थाम कर बैठिए. वैसे टॉलीवुड से भोजपुरी फिल्मों में पदार्पण करने वाली देजा अकेली नहीं हैं, बल्कि रंभा और ख़ुशबू भी भोजपुरी फिल्मों में अपनी क़िस्मत आज़मा चुकी हैं. वैसे इन अभिनेत्रियों के भोजपुरी फिल्मों में आने की एक दूसरी वजह भी है. दरअसल जब उन्हें महसूस होने लगता है कि अब वहां से उनका चार्म कम होता जा रहा है तो वह झट से दूसरी भाषा की फिल्मों का रूख़ कर लेती हैं. अब देजा के मामले में यह बात कहां तक सही है, यह तो सिर्फ़ वही बता सकती हैं.

देजाश्री का कहना है कि भोजपुरी फिल्मों में काम करने का अपना अलग मज़ा है. इन्होंने तमिल सिनेमा में कुछ आइटम सांग्स के अलावा *सोली अडीप्पन, अरीवा* और *थीरू रंगा* जैसी फिल्मों में काम किया है, लेकिन अब उन्हें भोजपुरिया सिनेमा ज़्यादा रास आ रहा है.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

38 वें स्थापना दिवस पर समस्तीपुर जिलावासियों एवं जनप्रतिनिधियों को
हार्दिक शुभकामनायें
रविरंजन गुप्ता
प्रखंड विकास पदाधिकारी
रोसड़ा (समस्तीपुर)

हिन्दी का पहला सप्ताहिक अखबार 'चौथी दुनिया' बिहार-झारखंड संस्करण के प्रकाशन एवं समस्तीपुर जिला के 38 वें स्थापना दिवस पर समस्त जिलावासियों एवं जनप्रतिनिधियों को
हार्दिक शुभकामनायें
रोमा भारती
सदस्य बिहार विधान परिषद्

38वें स्थापना दिवस पर समस्तीपुर जिलावासियों समेत 'चौथी दुनिया' के समस्त पाठकों को
हार्दिक शुभकामनायें
सुनीता सिंह
उपाध्यक्ष
जिला परिषद्, समस्तीपुर

H M S
SAMASTIPUR
HOLY MISSION HIGH SCHOOL
Affilited to C. B. S. E. (+2 Level)
SAMASTIPUR-848101
The School Family Extends its Cordial Compliments
To All The Denizens Of Samastipur District, Its
Officials and Government Personnel On Account Of
The 38th ZILA STHAPANA DIWAS
&
Children's Day
The School Also Wishes a Presperous, Peaceful
&
Pioneering Samastipur
Mr. A. K. Lal
Principal
Mrs. Bibha
Director